आमने - सामने

●

सहज - मार्ग पद्धति

पर पूछे गये प्रश्नों के उत्तर

●

संग्रहकर्त्ता
एस० एस० प्रसाद

९ नवम्बर १९८४
लखनऊ

आठ रुपये

आमुख

ईश्वरानुभूति के लिये "सहज-मार्ग" पद्धति अति ही सरल एवं प्राकृतिक पथ हैं, जो सांसारिक जीवन के सामान्य दिनचर्या में सहजता से निभाया जा सकता है सहज-मार्ग, का आदर्श इतना सादा एवं सरल है कि प्राय: इसी कारण लोग इसे भली-भांति समझ नहीं पाते, जो इस धारणा में रहते हैं कि ईश्वरानुभूति एक अत्यन्त ही कठिन कार्य हैं और जिसकी प्राप्ति के लिये कई कई जीवन तथा युगों rd अनवरत परिश्रम आवश्यक है। यही कारण है कि पद्धति का सही ढंग से अनुसरण करने में लोगों के मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार के प्रश्न उठते रहते हैं, चाहे वे अभ्यासी हैं अथवा नहीं।

किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में जितने भी सम्भावित प्रश्न उठ सकते हैं, लगभग सभी विभिन्न वर्ग के व्यक्तिओं द्वारा विभिन्न देशों में श्री बाबू जी महाराज की विदेश-यात्राओं के दौरान पूछे जा चुके हैं और जिनके उत्तर श्री बाबू जी महाराज ने स्वयं तथा मिशन के अन्य वरिष्ठ प्रशिक्षकों द्वारा दिये गये हैं। ऐसे सभी प्रश्नों एवं उनके उत्तर श्री पारसारथी राजगोपालाचारी द्वारा लिखित तथा मिशन द्वारा प्रकाशित निम्नलिखित पुस्तकों में दिये गये हैं :—

१— इण्डिया इन दि वेस्ट
२— सहज मार्ग इन यूरोप
३— ब्लोसम्स इन दि ईस्ट
४— गार्डेन ऑफ हार्टस्

यह पुस्तक 'आमने-सामने' इन चार पुस्तकों में दिये गये सभी प्रश्नों एवं उनके उत्तर का संकलन है। पाठकों की सुविधा हेतु, प्रश्नों को विषयानुकूल क्रमों में रखा गया है। तथा उस पुस्तक का नाम (संक्षिप्त) एवं पृष्ठ संख्या भी प्रत्येक प्रश्न के नीचे लिख दिया गया है, जहाँ से वह उद्धरित किया गया है।

मेरा विश्वास है, अपनी शंकाओं एवं कठिनाइयों को दूर करने में, यदि कोई है, जो पद्धति का सही ढंग से अनुसरण करने में बाधक है, यह पुस्तक पाठकों के लिये सहायक सिद्ध होगी। उक्त चारों पुस्तकों का प्रकाशन अंग्रेजी भाषा में हुआ है। अतएव इस पुस्तक में दी गयी सामाग्री उसका हिन्दी अनुवाद है।

छपाई में त्रुटियों के कारण पुस्तक में कुछ शब्द अशुद्ध छप गये हैं। पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों पर शुद्धि-पत्र संलग्न है। पुस्तक पढ़ने के पूर्व कृपया शुद्धि-पत्र के अनुसार शब्दों को शुद्ध कर लें।

—सुरेन्द्र मोहन प्रसाद
अभ्यासी, लखनऊ सेन्टर

संदर्भित पुस्तकों के विषय में

१– इण्डिया इन दि वेस्ट :–

श्री बाबू जी महाराज की मिस्र, यूरोप, यू० के० एवं यू० एस० ए० की ३ महीनों की पहली यात्रा १९७२ में (१०० प्रश्न एवं उत्तर)

२– महज मार्ग इन यूरोप :–

यूरोप के विभिन्न देशों की दूसरी यात्रा, जिसे बाबू जी महाराज ने मई १९७६ में प्रारम्भ की (५९ प्रश्न एवं उत्तर)

३– ब्लासम्स इन दि ईस्ट :–

मलेशिया एवं सिंगापुर के लिये श्री बाबू जी महाराज की पहली यात्रा जिसे अप्रैल १९७७ में प्रारम्भ की (१४ प्रश्न एवं उत्तर)

४– दि गार्डेन ऑफ हार्टस् :–

श्री बाबू जी की तीसरी यात्रा जो उन्होंने मई १९८० में यूरोप के विभिन्न देशों में की (८२ प्रश्न एवं उत्तर)

(कुल २५५ प्रश्न एवं उत्तर)

सभी उल्लेखित पुस्तकों के लेखक श्री पारसारथी राजगोपालाचारी महामन्त्री श्री रामचन्द्र मिशन है, जो श्री बाबू जी महाराज की सभी यात्राओं में उनके साथ रहे।

इस पुस्तक में दिये गये अक्षरों की व्याख्या

प्र०–	प्रश्न
बा०–	श्री बाबू जी महाराज
पी० आर०–	श्री पारसारथी राजगोपालाचारी (महामन्त्री)
ह०–	श्री हन्स गेंगलोफ (प्रिसेप्टर, जर्मनी)
सु०–	श्री एम० एस० सुन्दरा (प्रिसेप्टर, दिल्ली)
इ० वे०–	इण्डिया इन दि वेस्ट
स० मा० यू०–	सहज मार्ग इन यूरोप
बी० इ०–	ब्लौसम्स इन दि ईस्ट
गा० ह०–	गार्डेन ऑफ हार्टस्
पृ०	पृष्ठ

●

आध्यात्म का क्षेत्र इन्द्रियों की सीमा के परे से प्रारम्भ होता हैं।

—बाबू जी

ईश्वर :

प्र० (१) ईश्वर कौन है ? (पृ० ६५ बी० ई०)

बा० जो स्वयं भू है।

प्र० (२) क्या ईश्वर हमारे भीतर है ? (पृ० ७३ इ० वे०)

बा० ईश्वर प्रत्येक वस्तु के भीतर है, किन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या आप ईश्वर के भीतर है ?

प्र० (३) ईश्वरानुभूति, अथवा दैवी प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना क्या ईश्वर होना है ? (पृ० ७५ इ० वे०)

पी० आर० नहीं कोई भी ईश्वर नहीं हो सकता। ईश्वर केवल एक है और उसके अतिरिक्त कोई भी ईश्वर नहीं हो सकता। किन्तु हम ईश्वर-तुल्य हो सकते हैं।

प्र० (४) ईश्वर की व्याख्या कैसे की जाय बाबू जी ? (पृ० १७३ इ० वे०)

बा० यदि संसार के सभी विशेषण हटा दिये जायें तो जो कुछ शेष रह जायेगा वह ईश्वर हैं। यदि आप क्रोध में ईश्वर के विरूद्ध भद्दी भाषा का प्रयोग करना चाहते हैं तो आप जितना चाहें कर लें।

प्र० (५) ईश्वर ने इस संसार की उत्पत्ति क्यों की, जहां इतने दुःख एवं पीड़ायें हैं ? (पृ० १८० इ० वे०)

बा० यदि लाखो वर्षों तक शक्ति अपने आप को प्रगट न करें तो वह स्थूल हो जाये। इस लिये अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये "उन्होंने" शक्ति को भेजा और परिणामतः यह संसार बना।

प्र० (६) ईश्वर बहुत निर्दयी है, क्यों कि वह हमें पीड़ित होते देखता है और हमारी पीड़ाओं को दूर नही करता। (पृ० १८० इ० वे०)

बा० जब केन्द्र के मूल से शक्ति नीचे की ओर आयी तो उसका परिणाम सृष्टि हुआ। जब इसने केन्द्र को छोड़ दिया और उसके बाहर आया तो वस्तुओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ। मन, जो हम अपने साथ लाये थे, हमें बुनने लगा और हम, उस भौतिक रूप में आ गये, जो हम इस समय हैं। यह हमारा

अपना कार्य है कि हम मन का प्रयोग उचित ढंग से नहीं करते, और इस लिये दुःख इसका परिणाम है।

अतएव सभी क्लेश एवं पीड़ाओं के लिये हम स्वयं उत्तरदायी है।

यही कारण है कि मैंने कहा है कि समस्त चित्र विभागों का समुचित प्रयोग ही साधुता है। हमारे मस्तिष्क में बुरा और अच्छा कार्य करने का विचार ही क्यों उत्पन्न होता है? क्योंकि हमारे भीतर की शक्ति निष्क्रिय नहीं रह सकती। चूँकि प्रथम फुहारे केन्द्र से आयी है, और कुछ दूर चली है, परिवर्तित हो गया है, और मन में कुछ मलीनता आ गई। फिर भी केन्द्रीय शक्ति से हमें सहायता मिलती है।

जब शरीर में विष आ जाता है, तो ज्वर हो ही जाता है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि यथार्थ शक्ति जो हमारे भीतर कार्य कर रही है, अनिच्छित वस्तुओं को बाहर की ओर फेकना चाहती है। ये सब मैं आपको बता तो रहा हूं, किन्तु मैं नहीं जानता कि ये कहाँ तक सही है। मैंने केवल उसी विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की है जहाँ क, ख, ग, घ और ङ होता ही नहीं।

प्र० (७) ईश्वरानुभूति का क्या अर्थ है? (पृ० १०२ ई० वे०)

बा० आप क्या हैं, आप जानते हैं। किन्तु आप यह नहीं जानते कि "वह" क्या है? जब आप यह जान लेते हैं अथवा अपने में अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं, कि "वह" क्या है, यही ईश्वरानुभूति हैं।

प्र० (८) क्या भावनायें ईश्वरानुभूति में बाधा उत्पन्न करती है? (पृ० ६५ गा०ह०)

बा० यह भी धर्मजन्य विचार है।

प्र० (९) किन्तु भावनाएं तो सदा विद्यमान रहती है। हमें क्या करना चाहिये? (पृ० ६६ गा०ह०)

बा० वे कहाँ हैं? आपके घर में या और कहीं? मुझे तो भावना का अर्थ भी ज्ञात नहीं, इसलिये मैं इसके बारे में क्या व्यक्त करूं? अनुभूतियाँ यथार्थ है, भावनाएं अवास्तविक।

प्र० (१०) सत्यता क्या है? (पृ० ६९ इ० वे०)

बा० सत्यता आधार रहित अवलम्ब है।

प्र० (११) परिपूर्णता क्या है? (पृ० ६५ गा०ह०)

बा० जब सारी शक्तियाँ इतनी विकसित ही जायं कि निरन्तर सन्तुलन बना रहे।

प्र० (१२) एक नवजात-शिशु क्या पूर्ण है ? (पृ० ६५ गा०ह०)

बा० वह सुप्तावस्था में है। अब आप इसे क्या कहेंगे ? पूर्ण अथवा अपूर्ण ?

प्र० (१३) बाबू जी ! क्या आप व्याख्या कर सकते हैं कि 'स्वत्व क्या है' ? ऋषि लोग इससे क्या समझते हैं, जब वे कहते हैं—"स्वत्व" ? क्या यह ईश्वर है ? (पृ० १२१ गा०ह०)

बा० यह ईश्वर नहीं है। वह ईश्वर से भिन्न हैं। व्यक्तिगत का भाव ही स्वत्व हैं। यह अहंकार का परिणाम हैं।

ह० स्वत्व की भावना अहंकार का परिणाम है। अतः जहाँ स्वत्व का भाव उत्पन्न होता है, अहंकार जन्म लेता है।

●

साक्षात्कार के लिये वैराग्य अथवा अनासक्ति निःसन्देह एक आवश्यक स्थिति है। वैराग्य का वास्तविक अर्थ है, सांसारिक वस्तुओं से अनासक्ति, न कि उनका त्याग। वैराग्य, वास्तव में एक अवस्था अथवा मन की एक अन्तर्दशा है।

—सत्य का उदय (पृ० २४)

विचार :

प्र० (१४) परिपक्व विचार क्या है ? (पृ० ६५ गा०ह०)

बा० एक लक्ष्य, एक गुरु, एक विधि का रखना ।

प्र० (१५) मस्तिष्क में विचार किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? (पृ० २२३ ई०वे०)

बा० यदि मस्तिष्क में कोई विचार न हो तो इसका अर्थ है कि हम पूर्ण संतुलन की स्थिति में आ गये हैं । और तत्काल शरीर छिन्न-भिन्न हो जायेगा ।

प्र० (१६) विचार किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? (पृ० २२३ ई०वे०)

बा० हमारा मानस बृहत मानस अथवा दैवी मानस से आया है और इस लिये यह कितना भी भ्रष्ट क्यों न हो गया हो, पवित्रता इसमें सदा रहती ही है । चूँकि इस पवित्रता का सम्बन्ध दिव्य मन से होता है, यह अपने ऊपर अपवित्रता स्वीकार करने की इच्छा नहीं रखती । इस प्रकार अपवित्रता लगातार बाहर की ओर निष्कासित होती रहती है और यही बाहर की और निष्कासित अपवित्रता विचार का रूप धारण कर लेती है, जो हमें अनुभव होता रहता है ।

प्र० (१७) विचार एवं अर्न्तज्ञान में क्या अन्तर है ? (पृ० १४२ ई०वे०)

बा० कल्पना की उन्नत स्थिति विचार है, और विकार जब अपनी सीमा पार कर लेता है, तो अर्न्तज्ञान बन जाता है ।

प्र० (१८) जब हम विचार शून्य अवस्था में होते हैं, तो क्या चेतना रहती है ?
(पृ० ६५ गा०ह०)

बा० हाँ, यह लगभग एक पशु की अवस्था होती है, यह प्रवृत्ति का केवल प्रति उत्तर होता है । मैं आपको बता रहा हूं, पूर्ण तथा विचार शून्य अवस्था में होना सम्भव नहीं है । तब जीवन नहीं रहेगा । आवश्यकता है, अपने विचारों की प्रकृति में परिवर्तन लाना ।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आये, और हमसे बोले कि मैं उन्हें विचार शून्य कर दूं । मैं विनोद में सहमत हो गया किन्तु मैंने कहा कि मैं एक शर्त में ऐसा करुंगा । यदि वे मुझे विचार पूर्ण स्थिति में कर दें, तो मैं उन्हें विचार शून्य अवस्था में कर दूंगा ।

प्र० (१९) क्या ईश्वर के निकट होने के लिये पीड़ा का होना आवश्यक है ?
(पृ० १९८ ई०वे०)

बा० यह आवश्यक नहीं है। यह केवल मेरे लिये है। मेरे गुरु तीव्र पीड़ा से ग्रसित रहा करते थे। उनके जिगर में पीड़ा था और उन्हें अत्यधिक कष्ट रहता था, किन्तु जब वे तीव्र व्यथा में होते थे तो वे गीत गाया करते थे। मैंने पूछा ऐसा क्यों ? उन्होंने मुझसे कहा कि जब कोई व्यक्ति तीव्र पीड़ा में होता है तो उसे कराहना ही पड़ता है, अथवा इसी प्रकार की कोई ध्वनि उसके मुख से निकलती है, तो क्यों नहीं गीत गाकर कोलाहल करें मेरे गुरु ने एक बार मुझसे कहा था कि वे इस पीड़ा को एक मिनट में आसानी से दूर कर सकते हैं। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि यह पीड़ा ईश्वर द्वारा प्रदान की गयी है, कौन जानता है कि ईश्वर ने इसे क्यों दिया है ?

उन्होंने अनुभव किया कि इसमें कुछ कारण अवश्य हैं। ऐसा था मेरे गुरु का दैवी इच्छा के प्रति समर्पण।

प्र० (२०) धर्म क्या है ? (पृ० ६६ गा०ह०)

बा० कुछ सिद्धान्तों का एक स्थान पर संग्रहित होना धर्म है।

प्र० (२१) धर्म एवं आध्यात्म में क्या अन्तर है ? (पृ० ६५ गा०ह०)

बा० दर्शन बाह्य-जगत में प्रसन्नता प्रदान करता है, किन्तु मैं अन्तर में प्रसन्नता प्रदान करता हूं। और दर्शन के सम्बन्ध में वार्त्तालाप करने पर भी मैं बाह्य-प्रसन्नता ही प्रदान करता हूं। इसलिये आप यह समझें कि मैं बाह्य एवं अन्तर की दोनों प्रसन्नतायें देता हूं।

योग का उद्देश्य :—

"चित्र - वृत्तियों" का संशोधन है।

—पातंजलि

सहज मार्ग :

प्र० (२३) राजयोग क्या है ? और सहज-मार्ग क्या है ? (पृ० ६ स०मा०यू०)

मु० यह ईश्वरानुभूति की एक प्राचीन पद्धति है।

बा० मेरे गुरु के अनुभव पर आधारित राजयोग का एक पुनः निरुपित पद्धति सहज-मार्ग है।

प्र० (२४) आप का सन्देश क्या है ? (पृ० ७ स०मा०यू०)

बा० सर्वत्र शान्ति, एवं विचारों में विरोधाभास का अभाव।

प्र० (२५) यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? (पृ० ७ स०मा०यू०)

बा० प्राणाहुति एवं प्रार्थना के द्वारा।

प्र० (२६) प्राणाहुति की क्या आपकी कोई अलग विधि है ? (पृ० ७ स०मा०यू०)

बा० मेरे गुरु की प्रणाली ही मेरी प्रणाली है।

प्र० (२७) आपने कहा है कि सहज मार्ग राजयोग की पुनर्निरुपित पद्धति है। यह राजयोग से भिन्न कैसे हैं ? (पृ० ७ स०मा०यू०)

मु० उन्होंने यह नहीं कहा कि यह राजयोग से भिन्न हैं।

बा० यह भिन्न नहीं है। यह एक पद्धति है, जो मेरे गुरु के अनुभवों पर आधारित है। कहावत के अनुसार "नयी बोतल में पुरानी मदिरा।"

प्र० (२८) क्या सभी पद्धतियां अच्छी हैं ? (पृ० ७३ इ०वे०)

बा० सभी पद्धतियां अच्छी हो सकती हैं, किन्तु मैं आपको बताऊं कि दूध अच्छा होता है, किन्तु कुछ लोगों को इससे अतिसार हो जाता है। इसलिये उन्हें इसका अवश्य ही त्याग करना चाहिये।

प्र० (२९) अनेकों लोग कहते है—"मुझपर भरोसा करो"। किस पर भरोसा करुं यह निर्णय करने के लिये मैं कैसे योग्य बनूँ ? इस चुनाव के हेतु कुछ भी सहायक यन्त्र नहीं है। हम किस पर भरोसा करें ? प्रभाव अनेकों की पीठ: करती है। नव-सिखुआ के लिये यही भ्रमजाल है। सभी लोग प्राय: कहते हैं—"मुझ पर भरोसा करो।" और जब मैं एक मनुष्य हूं, मुझे कुछ ऐसी

वस्तु चाहिये, जिसे मैं एक मनुष्य के नाते समझ सकूँ। जिसपर मैं विश्वास कर सकूँ। केवल कह देना—"मुझ पर भरोसा करो" कुछ ऐसा है, जिससे आरम्भ में मुझे कोई सहायता नहीं मिलती। (पृ० ११० गा० ह०)

पी० आर० बाबू जी यह नहीं कहते कि—"मुझ पर भरोसा करें।" वे कहते हैं कि आप अपने आप पर भरोसा करें। यह एक बात हुई। आप अपने स्वयं में किस बात पर भरोसा करते हैं? आपको अभ्यास करना पड़ेगा और परिणाम देखकर निर्णय लेना पड़ेगा। सहज मार्ग में हम यह नहीं कहते कि आप गुरु पर भरोसा करें। हमारी यह मांग नहीं है कि आप पहले से ही पद्धति पर भरोसा कर लें। हम यह नहीं चाहते कि आप किसी पर भरोसा करें, सिवाय स्वयं अपनी अनुभूति के, जो आपके अभ्यास का प्रतिफल है। यदि वे अनुकूल हैं, अभ्यास करते रहें। यदि वे अनुकूल नहीं है तो आप शौक से उसका त्याग कर दें। अभ्यास के अन्य सभी साधनाओं से सहज मार्ग की यह बहुत बड़ी विशेष भिन्नता है।

मेरे सदगुरु यह नहीं कहते कि वे गुरु हैं। वे कहते हैं कि वे केवल पथ-प्रदर्शक है। और जहाँ कहीं भी लोग विश्वास के सम्बन्ध में यह प्रश्न करते हैं, वे कभी नहीं कहते— "मुझे परख कर देखें" वे कहते "पद्धति को परख कर देखें"।

यदि आप संन्तुष्ट है, तो अभ्यास जारी रखें। यही कारण है कि ध्यान करने के पूर्व मैंने बल पूर्वक कहा था कि यदि वांछित परिणाम प्राप्त करना है, तो पद्धति का अनुपालन अधिकतम शुद्ध एवं दृढ़तापूर्वक होना चाहिये। हमने इस बात पर बल नहीं दिया कि आपको गुरु पर भरोसा करना चाहिये या गुरु से प्रेम करना चाहिये, या आप उन पर अवश्य ही विश्वास करें, या इसी प्रकार की अन्य कोई बात। सहज मार्ग अपनी पद्धति पर सहज अवलम्बित हैं। सहज-मार्ग पद्धति की वरीयता का प्रमाण आप में है, न कि जो बाबू जी कहते हैं, उनमें।

प्र० (३१) क्या गृहस्थ-जीवन में किसी भी व्यक्ति द्वारा यह किया जा सकता है?
(पृ० ८ स०मा०यू०)

बा० हाँ! यह सामान्यतः गृहस्थों के लिये ही है। अन्य लोग भी अभ्यास द्वारा इससे लाभ उठा सकते हैं।

प्र० (३२) यह पद्धति, जैसा कि आपने कहा है, आपको, आपके गुरु ने दिया है। उन्हें यह मार्ग अपनाने के लिये क्या कोई कारण था? मेरे कहने का तात्पर्य है, क्या आप उनके जीवन में किसी घटना से इसे जोड़ सकते हैं?
(पृ० ८ स०मा०यू०)

बा० मेरे गुरु ने गृहस्थ जीवन को नकारा नही। जैसा कि मैंने कहा है, उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर इसे प्रारम्भ किया था।

सु० हर व्यक्ति को गृहस्थ होने की आवश्यकता नहीं रहती। गृहस्थ लोग अधिक है, किन्तु यह पद्धति प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक आवश्यक आवश्यकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह केवल गृहस्थों के लिये ही है। सन्यासी भी इससे लाभ उठा सकते हैं। किन्तु, विश्व में गृहस्थ अधिक हैं। सामान्य भ्रान्ति यह है कि आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करने के लिये सन्यासी होना आवश्यक हैं। हमारे बाबू जी ने कहा है—"यह आवश्यक नहीं" यह पद्धति प्रत्येक व्यक्ति के लिये हैं।

प्र० (३३) लाला जी को इसे अपनाने का क्या कोई विशिष्ट कारण था ? क्या व्यक्तिगत उसमें जुड़ी कोई घटना थी, जिसने उन्हें इसे अपनाने के लिये प्रेरित किया ? (पृ० ९ स०मा०यू०)

बा० यह समय की माँग थी। और उन्होंने, मेरे गुरु ने, वह सब कुछ किया जो आवश्यक था।

सु० वह समय आ गया था, जब इसे देना था। यह एक अति प्राचीन पद्धति है, जो, जैसा कि हम लोगों को बतलाया गया है, राजा जनक के ७२ पीढ़ी पूर्व प्रचलित था। बाबू जी के गुरु जी ने अनुभव किया कि विश्व को इसे प्राप्त करने का समय आ गया है।

प्र० (३४) अन्ततः यह पद्धति, जिसकी आप शिक्षा दे रहे हैं, भौतिक संसार से सन्यास ही तो है ? क्या ऐसा नहीं है ? (पृ० ९ स०मा०यू०)

बा० नहीं।

सु० नहीं। ठीक इसके विपरीत आपको सन्यासी होना नहीं पड़ता। आप गृहस्थ जीवन में रहते हुये, अपने यथाक्रम व्यापार का अनुसरण करते हुये, सामान्य जीवन व्यतीत करते हुये, इसे अपना सकते हैं।

प्र० (३५) कितने समय की आवश्यकता होती है ? (पृ० १० स०मा०यू०)

बा० यह आप पर निर्भर करता है।

प्र० (३६) मेरे कहने का तात्पर्य है, कि ध्यान के लिये कितने समय की आवश्यकता है ? (पृ० १० स०मा०यू०)

बा० आप २० मिनट से प्रारम्भ कर सकते हैं, और एक घंटा तक ले जा सकते हैं।

प्र० (३७) क्या इसके लिये कुछ बन्धन एवं कर्त्तव्य निर्देशित हैं ?

(पृ० १० स०मा०यू०)

बा० गीता के अनुसार कर्त्तव्य अनेक हैं।

प्र० (३८) क्या कुछ निषेध है ? (पृ० १० स०मा०यू०)

बा० केवल निषेध का निषेध है।

प्र० (३९) आपने कहा है कि आपके इस संस्था में केवल 'निषेध' का ही निषेध है। क्या आप समझते हैं कि एक व्यक्ति पाप करता है यदि उसके पास गुणों की अपनी धर्म-संहिता है ? (पृ० २२ स०मा०यू०)

सु० आप के पास कुछ आचार संहिता तो होने ही चाहिये। आधार सहिता ही आधार है। हमें आचार संहिता का पालन करना चाहिये। 'उच्चत्तम' का अनुसरण बौद्धिक उद्यम से भा ऊचा होता है। प्रयास एवं अनुशासन के बिना कभी कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

पी० आर० जब तक वे उचित और अनुचित पहचान नहीं सके तब तक आचार संहिता किसी ने नहीं बनाया कृष्ण रहे हों चाहे बुद्ध। ये दोनों समानान्तर हैं। अनेकों बार उचित एवं अनुचित के सम्बन्ध में अपना विचार निश्चित करना कठिन हो जाता है। आरम्भ में आपको किसी न किसी पर निर्भर करना पड़ता है, जो आपको बताये कि क्या उचित है और क्या अनुचित। इस प्रकार नियम और धर्म-संहिता अस्तित्व में आते हैं। और वह व्यक्ति उचित मार्ग पर था. इसके प्रशसनीय मूल्यांकन के लिये हमकों अपने को उस उच्च स्थिति पर लाना चाहिये जिसको उस विशिष्ट व्यक्ति ने प्राप्त करके ये नियम हम लोगों को प्रदान किया है। यह बहुत कुछ पिता एवं पुत्र के सम्बन्ध जैसा है। जब एक पिता अपने पुत्र को पीटता है तो पुत्र इसका कारण नहीं जानता और वह पूछेगा—"मेरे पिता मुझे क्यों मार रहे हैं ?" और जब पुत्र विकसित होकर अपनी बारी से पिता बनता है, तब वह यथार्थतः समझ जाता है कि क्यों कुछ निश्चित अवसरों पर उसके पिता को उसे अनुशासित बनाना पड़ा था।

प्र० (४०) क्या यहाँ विश्वाम द्वारा रोग मुक्त करने जैसा कुछ है ?

(पृ० १२ स०मा०यू०)

बा० नहीं।

चमत्कार

प्र० (४१) कोई चकत्कार ? (पृ० १२ स०मा०यू०)

बा० आप सभी लोग ईसा मसीह की कहानी जानते है । जीवन भर वे चमत्कार का प्रदर्शन करते रहे और उनके साथ, उनके जीवन-काल में केवल १२ अनुयायी रहे, जिनमें से एक ने उन्हें त्याग ही दिया ।

यह कोई आवश्यक नहीं कि चमत्कार हों । राजयोग के अनुसार शीघ्र ही चमत्कार होने लगते हैं, किन्तु हमें इसके लिये चेष्टा नहीं करनी चाहिये ।

प्र० (४२) जो लोग चमत्कारों का प्रदर्शन करते हैं, उनके बारे में आपके क्या विचार है ? (पृ० १२ स०मा०यू०)

बा० वह एक विश्व से आकर दूसरे विश्व में कूदने के समान हैं ।

पी० आर० अपने बाबू जी का उद्धरण देते हुये "मनुष्य का रुपान्तरण होना" सबसे बड़ा चमत्कार है ।

प्र० (४३) जिन लोगों ने एक प्रकार का व्यक्ति गत धर्म-सम्प्रदाय आरम्भ किया है, उनके द्वारा चमत्कारों के प्रदर्शन पर कृपया टिप्पणी करें ।
(पृ० १३ स०मा०यू०)

बा० इस सम्बन्ध में मैं क्या कह सकता हूं । अपने कार्य के लिये वे उत्तरदायी हैं ।

प्र० (४४) क्या चमत्कार मानवता के किसी भी प्रयोग की वस्तु हैं ?
(पृ० १३ स०मा०यू०)

बा० चमत्कार मानवता के किसी प्रयोग की वस्तु नहीं है । वह एक भिन्न वस्तु है ।

प्र० (४५) जो चमत्कार का प्रदर्शन करते हैं, क्या उन्हें कोई लाभ है ?
(पृ० १३ स०मा०यू०)

बा० वे विख्यात हो जाते हैं ।

●

मन्त्र :

प्र० (४६) मन्त्रों की क्या शक्ति है ? (पृ० १५१ इ०वे०)

बा० सहज मार्ग में हम मन्त्र-जाप का समर्थन नहीं करते।

प्र० (४७) फिर भी क्या उनमें कोई शक्ति है ? (पृ० १५१ इ०वे०)

बा० कहा जाता है कि मंत्रों में शक्ति है, क्योंकि अनेकों लोगों ने इसकी शिक्षा दी है। किन्तु, मेरे स्वयं के विचार से मात्र ध्यान ही यथार्थ लक्ष्य वास्तविक गन्तव्य तक पहुंचा सकता है। मंत्र-योग्य के प्रयोग की सही विधि है कि मंत्र के अर्थ पर ध्यान किया जाये। वैदिक सूत्र यही कहते हैं। अन्यथा इससे कोई लाभ नहीं। यदि आप किसी मंत्र का, बिना उसके भाव पर ध्यान रखते हुये, केवल उच्चारण कर रहें हैं, तो इसका प्रभाव कुछ पड़ सकता है, किन्तु अधिक नहीं। मेरे विचार से आप अपने नाम का भी उच्चार अनवरत रूप में कर सकते हैं—यह भी एक मंत्र हो जाता है।

प्र० (४८) मंत्र के बारे में क्या कहना है ? क्या आप किसी मंत्र की सम्मति देगें ?
(पृ० ६६ बी० ई०)

बा० सामान्यतः मैं कोई मंत्र नहीं देता हूं, किन्तु यदि आवश्यक हो तो मैं ऐसा कर सकता हूं। किन्तु अभी तक ऐसा करने की आवश्यकता का अनुभव मुझे नहीं हुआ। मंत्र के सम्बन्ध में आपको श्री पातजंली के सूत्रों को पढ़ना चाहिये। मेरे विचार से यह ३२वाँ सूत्र है या ऐसा ही कुछ। उन्होंने साफ-साफ कहा है कि यदि किसी मंत्र का जाप करना है तो केवल उसके अर्थ के भावों का मनन करना चाहिये।

प्र० (४९) मैं मंत्र का ध्यान करना चाहता हूं। यह ठीक है अथवा आपकी पद्धति ठीक है ?
(पृ० ७१ इ०वे०)

बा० यह आपके अनुभव पर निर्भर करता है। यदि आप पाते हैं कि आप अपनी पद्धति में प्रगति कर रहे हैं तो इसे जारी रखें। यदि नहीं तो अन्य पद्धति ढूढ़ें।

●

कुण्डलिनी :

प्र० (५०) कुण्डलिनी के बारे में आपका क्या कहना है ? क्या आपके योग में इसका कोई योगदान है ? (पृ० ६७ बी०ई०)

बा० यदि कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर दिया जाये, तो उच्चजगत के कार्य में यह लाभदायक होता है। प्रत्येक व्यक्ति को उच्च जगत का कार्य नहीं सौंपा जाता। अतएव यह शक्ति सभी लोगों के लिये आवश्यक नहीं है इस प्रकार के उच्च कार्य के लिये मात्र एक या दो व्यक्ति हो सकते हैं। और आध्यात्मिक प्रगति के लिये यह आवश्यक भी नहीं है।

प्र० (५१) आपके संगठन में क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसमें कुण्डलिनी जागृत अथवा गतिशील हो गयी हो ? (पृ० ६८ बी०ई०)

बा० मैं आपको बताऊँ। मान लें गुरु की कृपा से किसी व्यक्ति में सभी अन्य केन्द्र जागृत हो चके हैं, तब केवल एक बिन्दु को अछूता क्यों छोड़ दिया जाये ? इस प्रकार, ऐसे मामलों में यह किया जा सकता है। क्या आपने पढ़ा है जो श्री औसपेन्सकी ने कुण्डलिनी के बारे में लिखा है ? वे इसे कुण्ड-विरोध की संज्ञा देते हैं। ऐसा कुछ, जो प्रगति में एक प्रकार का अवरोध दें। उनके मतानुसार यह वास्तव में प्रगति अवरोधक है। आप इसके बारे में विचार कर सकते हैं। आप प्रयाप्त अध्ययनशील व्यक्ति हैं।

●

कीर्तन-भजन में तन्मयता होती है, एकाग्रता नहीं। एकाग्रता तो ध्यान में ही पाई जा सकती।

सहज मार्ग पद्धति :

प्र० (५२) विगत आठ महीनों से मैं एक अन्य गुरु का अनुसरण कर रहा हूं और उन्होंने मुझे एक मंत्र दिया है। क्या मैं उसका अनुसरण कर सकता हूं और आपकी पद्धति भी अपना सकता हूं ?

(पृ० ६५ बी०ई०)

बा० मुझे आपको सहज रूप में बता देना है कि कहीं भी ले जाने के लिये दो साधन नहीं हो सकते। एक दूसरे में विरोध उत्पन्न कर सकता है। कुछ समय के लिये आप एक को स्थगित कर अन्य का अनुसरण कर निश्चित कर सकते हैं कि आप किसका अनुसरण करना चाहते हैं। मैं नही समझ पाता कि लोग गुरु परिवर्तित करने में क्यों झिझकते हैं। अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये गुरु की शरण ली जाती है। जो आप चाहते हैं, यदि वह वे नहीं दे सकते, तो आपको अन्य व्यक्ति के शरण में जाना चाहिये। निसन्देह उनके प्रति आपकी श्रद्धा होनी चाहिये, किन्तु आपको उन्हें बता देना चाहिये कि जो आप चाहते हैं, वह वे नहीं दे सकते, इस लिये आप अन्य व्यक्ति के पास जा रहे हैं।

प्र० (५३) आपने कहा है कि प्राणाहुति सहज-मार्ग का एक बिशेष अंग हैं। बस्तुतः यह क्या है ? और कैसे कार्य करता है ? (पृ० १३ स०मा०यू०)

बा० यदि आप इसकी परीक्षा करें तो आप पायेंगे कि यह अजूबा कार्य करता है।

प्र० (५४) यह बस्तुतः कैसे कार्य करता है ? (पृ० १४ स०मा०यू०)

बा० यह एक दैवि शक्ति है, जिसका प्रयोग मनुष्य के रुपान्तरण के लिये होता है। रुपान्तरण प्राणाहुति का प्रतिफल है।

सु० आपके भीतर, आपके व्यक्तिगत जीवन कोष में एक दैवि चिनगारी का प्रवेश कराया जाता है और रुपान्तरण उसी का प्रतिफल है। इस पद्धति में आधारभूत बस्तु यह है कि गुरु अभ्यासी के भीतर दैवि शक्ति का एक सूक्ष्म अंश देकर उसकी सहायता करता है और वह दैवि शक्ति फिर अपना कार्य स्वयं करती रहती है। इसे ही प्राणाहुति कहा जाता है। प्राण दिब्य है और दिब्यता आपमें प्रबिष्ट की जाती है।

प्र० (५५) क्या आपके शिष्यों में आत्म-ज्ञानी हैं ? मैं इस लिये पूछ रहा हूं कि यदि कोई हो तो मैं उनके भी दर्शन करने की इच्छा रखता हूं । मैं सभी आत्म-ज्ञानी महापुरुषों के दर्शन का इच्छुक हूं ।

(पृ० ६७ बी० ई०)

बा० मैं आपसे एक बात कह रहा हूं । कुछ लोग हैं, जो लगभग शिखर पर है और अन्य लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं ।

पी० आर० दर्शन का अर्थ है "देखना" । आध्यात्मिकता में, जब कोई आत्म-ज्ञानी अथवा गुरु का दर्शन करता है, तो यह पर्याप्त नहीं है कि वह गुरु का केवल भौतिक स्वरुप देखें । वास्तविक दर्शन का अर्थ है, गुरु को उच्च काल्पनिक दृष्टि से देखा जाना, ताकि गुरु के बाह्य भौतिक स्वरूप के पीछे यथार्थ गुरु को देखा जा सके । यही इसका सही अर्थ है । मेरे बाबू जी ने बार-बार कहा है कि अनेकों लोग उन्हें देखने आते हैं, किंतु कुछ ही लोग उनकी परख कर पाते हैं ।

प्र० (५६) क्या मैं जान सकता हूं कि वे उन्नत व्यक्ति कौन है ?

(पृ० ६७ बी० ई०)

बा० मैं समझता हूं, आपके लिये उसकी कोई उपयोगिता नहीं है । यह उनका व्यक्तिगत विषय है और वह बिचार-विमर्श के लिये नहीं है ।

प्र० (५७) क्या ऐसे अनुयायी हैं, जो बहुत ही व्यस्त रहते हैं ?

(पृ० १५ स०मा०यू०)

सु० हम सभी व्यस्त लोग हैं । यहाँ हम लोगों में से प्रत्येक कार्य में लगा है । हम लोगों में से कोई भी बिना कार्य के नहीं है । श्री चारी एक व्यवसायिक संस्था के प्रमुख अधिशासी हैं । मैं एक सार्वजनिक क्षेत्र सघटन का प्रमुख अधिशासी हूं । अधिकांश अभ्यासी, अभियंता, शोध-छात्र तथा जीवन के सभी प्रकार के धन्धों में लगे हैं । सभी पूर्णतया व्यस्त हैं । हम यह करते हैं कि अपने व्यस्त कहे जानेवाले कार्य-क्रम से ध्यान के लिये समय निकाल लेते हैं । यहाँ हम भवष्यि की आशा नहीं रखते । यह आपके लिये आवश्यक नहीं कि आप संसार का त्याग करें और हिमालय में जा बैठे । आप भी यहाँ आ सकते हैं और आधा घंटा समय लगा सकते हैं । जो कुछ यहाँ आवश्यक है, वह है प्रातःकाल का घंटे-आध-घंटे का सयम ।

प्र० (५८) आप मिशन में अधिक संख्या में सदस्य क्यों चाहते हैं ? यदि छः या सात व्यक्ति हों, तो क्या यह पर्याप्त नहीं हैं ?

(पृ० १०७ इ०वे०)

बा० देखिये, मैं अनन्त से आया हूं और अनन्त का बीज मेरे भीतर है। और जो कुछ मैं करता हूं, उसमें मैं प्राकृतिक रूप में चाहूंगा कि अनन्त मेरे साथ रहे, और सभी लोगों के लिये भी मैं चाहता हूं कि उनके साथ अनन्त रहे। एक चोर भी चाहता है कि उसके साथ बहुत से लोग रहें। यह उसी अनन्त का प्रभाव है, किन्तु एक अनुचित दिशा में। मैं आपको एक बात और बताता हूं—हमें ईश्वर की आंशिक शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिये, अपितु हमें ईश्वर की सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करना चाहिये। किन्तु जब "मैं" का प्राबाल्य होता है, तब वह पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसलिये "मैं" को छोड़े, शक्ति आ जायेगी। किन्तु उस शक्ति का प्रयोग नियन्त्रित होना चाहिये। व्यक्ति को इस दिशा में अत्यधिक सर्तक रहना पड़ेगा।

प्र० (५९) स्वामी ! आप इतने समय से हम लोगों पर कार्य कर रहे हैं, और हम भी अपने छोटे रूप में, आपको सहयोग देने में, कठिन परिश्रम कर रहे हैं। क्या कोई ऐसा मार्ग नहीं है, जिससे आप अपना कार्य एक घंटा जैसे थोड़े समय में पूरा कर लें और आपके तथा हमारे इस कार्य-सम्बन्धी श्रम की बचत हो जायें ?

(पृ० ६० गा०ह०)

बा० इस सम्बन्ध में लाला जी ने कहा है :—"जितने समय में एक अश्रु-कण नेत्र से बाहर आती है, मात्र उतने समय में परिपूर्णता प्रदान की जा सकती है, किन्तु पूरा नाड़ी-तन्त्र टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जायेगा।"

यदि कुछ मैं तुरन्त करा दूं और वस्तुतः ऐसा किया भी जा सकता है, तो व्यक्ति कुछ भी अनुभव नहीं कर पायेगा और फलतः वह प्राप्त निधि का मूल्यांकन नहीं कर पायेगा।

प्र० (६०) बाबू जी, आपने "सत्य का उदय" अनेकों वर्ष पूर्व लिखा है। यही बात आप की अन्य पुस्तकों के लिये भी लागू हैं। जैसे "राज योग का दिव्य दर्शन" तथा "दस उसूलों को सरह"। क्या कभी आप इनका संशोधन करेंगे ? कदाचित उन पुस्तकों में आपके द्वारा उठाये गये कुछ सूत्र अब प्रभावी न हों ?

(पृ० २४७ गा०ह०)

बा० मैं आपको बताऊँ, वे पुस्तकें केवल आज के लिये या एक वर्ष के लिये अथवा सौ वर्षों के लिये नहीं लिखी गयी हैं। उनमें जो कुछ लिखा गया है, सदा के लिये है। वे भविष्य के लिये है। इस लिये, यद्यपि वे सरल हैं, अनेक लोग उन्हें समझने में अत्यधिक कठिनाई पाते हैं।

प्र० (६१) यह कैसे हो सकता है बाबू जी ? यदि वे सरल हैं, तो उन्हें समझना सहज नहीं होना चाहिये ? (पृ० २४८ गा०ह०)

बा० मैं आपको वेदों का उदाहरण देता हूं। मेरा विचार है कि जब प्राचीन काल में ऋषियों द्वारा वे लिखे गये, उस समय कुछ ही लोग उसे समझ सकते रहे होंगे। आज उनके अर्थ समझना कितना सहज हो गया है। वही बात सहज-मार्ग शिक्षा के लिये है। ये नीतियाँ भविष्य के लिये हैं। भविष्य में लोग उन्हें सहजता से समझ लेंगे।

प्र० (६२) इस लिये क्या आप अपनी पुस्तकों का संशोधज नहीं करेंगे ? (पृ० २४८ गा०ह०)

बा० मैं समझता हूं, मैंने आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया है।

प्र० (६३) मैं सब कुछ जान लेना चाहता हूं। इसे कैसे करें ? (पृ० ६८ बी०इ०)

बा० फारसी में एक द्वीपदी है, जिसमें एक सन्त का कथन है कि— मैंने जो कुछ जाना है वह यह है कि मैंने कुछ नहीं जाना"।

एकाग्रता के द्वारा ईश्वर को कभी नहीं पा सकता, क्यों कि एकाग्रता में हम एक-धुरी हो जाते हैं और किसी वस्तु की प्रतीक्षा नहीं करते। लेकिन ध्यान में हम किसी वस्तु की प्रतीक्षा करते हैं, और वह है— ईश्वर।

—बाबू जी

प्रशिक्षण केन्द्र

प्र० (६४) क्या दिल्ली में कोई केन्द्र हैं ? (पृ० ११ स०मा०यू०)

सु० हाँ, हैं। दिल्ली का हमारा केन्द्र इसी घर में है। हम यहाँ रविवार को प्रातः काल एकत्रित होते हैं।

प्र० (६५) दिल्ली में आपके कितने सदस्य हैं ? (पृ० ११ स०मा०यू०)

सु० यहाँ २०० से अधिक सदस्य हैं। रविवार को प्रातः काल औसतन ३० की उपस्थिति रहती हैं। हम दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों एवं स्थानों पर भी एकत्रित होते हैं। पूरे सप्ताह हमारे ध्यान की बैठकें होती रहती हैं। इन सामूहिक पूजा के अतिरिक्त हम लोग व्यक्तिगत पूजा भी करते हैं। प्रशिक्षक व्यक्तिगत पूजा देने में पर्याप्त समय प्रदान करते हैं।

प्र० (६६) इससे हम किस रूप में लाभान्वित हो सकते हैं ? (पृ० ११ स०मा०यू०)

बा० पुडिंग का स्वाद खाने में है ! करके देखें और स्वयं अनुभव प्राप्त करें।

प्र० (६७) विदेशों में यह कहाँ तक सफल हैं ? (पृ० ११ स०मा०ह०)

सु० वहाँ बड़ी संख्या में अभ्यासी हैं। युवक लोग आते हैं और वे इस पद्धति से सन्तुष्ट हैं। पहले के अपेक्षा अब वे अधिक समुन्नत हैं। केवल सद्गुरु श्री बाबू जी महाराज से मिलने तथा उनकी उपस्थिति में ध्यान करने के लिये उनमें से कुछ यहाँ प्रतिवर्ष आते हैं, और कुछ तो वर्ष में दो-दो बार आते हैं।

प्र० (६८) विदेशों में स्थित अपने केन्द्रों के कार्य-कलापों के सम्बन्ध में क्या आप कुछ बता सकते हैं ? (पृ० १० स०मा०यू०)

पी० आर० मूलतः यहाँ के तथा विदेशों के केन्द्रों में कोई भिन्नता नहीं है। ध्यान वही है, प्रशिक्षण वही है। केवल भौगोलिक दूरियाँ हैं। बाबू जी के प्रतिनिधि स्वरूप कार्य हेतु हमारे प्रशिक्षक वहाँ भी होते हैं। वे सप्ताह में एक और सामुहिक ध्यान कराते हैं।

प्र० (६९) क्या विदेशों के केन्द्रों में कोई अन्य प्रकार का कार्य भी होता है ? (पृ० १८ स०मा०यू०)

पी० आर० ध्यान के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं।

प्र० (७०) पुस्तकों के प्रकाशन जैसा कुछ कार्य ? (पृ० १८ स०मा०यू०)

पी० आर० अभी तक नहीं। केवल हाल में उन लोगों ने बाबू जी के कार्य का कुछ अनुवाद किया है।

सु० वे मूलतः ध्यान के केन्द्र हैं। यहाँ कोई आर्थिक प्रश्न नहीं है। कोई शुल्क आदि नहीं हैं। विदेशों के ये प्रशिक्षक इस पद्धति के अनुयायियों के लिये अत्यधिक समय एवं श्रम लगाते हैं। यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक संस्था है।

प्र० (७१) इस पद्धति के सम्बन्ध में अन्य देशों के लोग जानकारी कैसे प्राप्त करते हैं। (पृ० १८ स०मा०यू०)

पी० आर० बिल्कुल इसी प्रकार मौखिक रूप से। हम लोग आक्रामक प्रचार में विश्वास नहीं करते।

सु० हम लोग प्रचार में विश्वास नहीं करते। ऐसे प्रचारक अध्यर्थनाओं पर ये आध्यात्मिक विषय प्रभावी नहीं होते। यह उस वर्ग के लोगों के लिये है, जो वास्तव में ईश्वरानुभूति के लिये अभिरूचि रखते हैं। केवल ऐसे ही लोग यहाँ आते हैं। दिल्ली में अनेकों लोग इसे नहीं जानते। हम अधिक लोगों के होने में रूचि नहीं रखते। हम उन लोगों में अधिक रूचि रखते हैं, जो लगन वाले हैं, और जो इस पद्धति से लाभ उठाते हैं। गुण अधिक महत्वपूर्ण होता है।

प्र० (७२) क्या युवा लोग अधिक हैं ? (पृ० १९ स०मा०यू०)

सु० युवा लोगों की संख्या बहुत अधिक है। पश्चिम में अधिकांश युवा वर्ग ही सम्मिलित होता है।

प्र० (७३) क्या आप कुछ का विषय इतिहास बता सकते हैं ? (पृ० १९ स०मा०यू०)

सु० हम विषय-इतिहास नहीं रखते। किन्तु समुद्र पार के अभ्यासी दिल्ली आते हैं और कभी-कभी सामूहिक रूप में आते हैं। मैं इस प्रकार की एक सभा का आयोजन कर सकता हूं और आने पर उन लोगों का आप से परिचय करा सकता हूं। वे कितने अधिक लाभान्वित हुये हैं, यह देखना बड़ा रोचक लगता है।

प्र० (७४) क्या इन विदेशियों के लिये कुछ विशिष्ट नियम है ?

(पृ० १९ स०मा०यू०)

पी० आर० नहीं। कोई विशिष्ट नियम अथवा निर्देश नहीं है। वे सभी के लिये समान हैं।

प्र० (७५) वे नियम क्या है ? (पृ० २० स०मा०यू०)

पी० आर० वे प्रधान रूप से आचार सम्बन्धी हैं। अपने अन्तः करण के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना। बाबू जी ने एक बार लिखा था कि यदि ऋषि लोग बर्फीले स्थानों में जन्म लिये होते तो वे प्रति दिन प्रातः काल स्नान करने की आज्ञा नहीं देते। ये सब वातावरण के अनुसार अनुकूल होता है और ऋषियों ने उनके लिये भौगोलिक स्थिति के अनुसार आज्ञा दी है। उदाहरणार्थ आप इस्लाम में देखते हैं कि जल का अपव्यय सर्वोच्च पाप माना जाता है, क्योंकि अरब में जल स्वर्ण से भी अधिक दुर्लभ हैं। ये सब अधिकतर स्थान एवं वातावरण के अनुसार होता है।

प्र० (७६) क्या अभ्यार्थियों को आध्यात्मिक लाभ के लिये भारत जाना होता है ?

[(पृ० ७९ गा०ह०)

आ० हाँ ! मानसिक स्थिति के समुचित अध्ययन के लिये तथा प्राणाहुति प्राप्ति के लिये यह कभी-कभी आवश्यक होता है।

प्र० (७७) प्रशिक्षकों के सम्बन्ध में आप क्या हमें बता सकते हैं कि विदेशों में प्रशिक्षक भारतीय हैं अथवा विदेशी ? (पृ० १६ स०मा०यू०)

सु० वे अपने-अपने देश के ही निवासी होते हैं।

प्र० (७८) उनका प्रशिक्षण क्या है ? (पृ० १६ स०मा०यू०)

पी० आर० यह वही प्रशिक्षण है जो बाबू जी भारत में प्रशिक्षकों को प्रदान करते हैं। बाबू जी द्वारा व्यक्तिगत रूप से उन्हें लोगों को प्रशिक्षित करने की अनुमति दी गयी है।

सु० वे बिल्कुल हमारे जैसे हैं। वे सामान्य रूप से कार्यकारी लोग हैं। युवक हैं। जो लोगों को प्रशिक्षण प्रदान करने के प्रयास में लगे हुये हैं।

पी० आर० बाबू जी का एक महत्वपूर्ण सन्देश है—"आध्यात्मिक जीवन से न तो भौतिक जीवन का बहिष्कार करना है। और न भौतिक जीवन से

आध्यात्मिक जीवन का । एक सन्तुलित मानव अस्तित्व के लिये दोनों अनिवार्य है ।"

प्र० (७९) दोनों में यह सन्तुलन कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?

(पृ० १७ स०मा०यू०)

पी० आर० दोनों के प्रति समान ध्यान देकर । यही एक मार्ग है जिसके द्वारा दोनों के मध्य आप निकट से निकट सन्तुलन प्राप्त कर सकते हैं ।

प्रकृति, अपनी बाहें फैलाये, तुम्हें अपनी गोद में समेटने के लिये उत्सुक है । ईश्वरीय अनुकम्पा पूर्ण वेग से प्रवाहित हो रही है । ऐसा सुअवसर शायद सहस्त्रों वर्षों तक पुनः प्राप्त न हो । इस समय जो चूक जायेंगे, शायद युगों तक पुनः प्राप्त नहीं कर सकेंगे, जब तक कि इस संसार में दिव्य व्यक्तित्व का पुनः अवतरण नहीं होता ।

—बाबू जी

प्रशिक्षक :

प्र० (८०) प्रशिक्षकों का चुनाव आप कैसे करते हैं ? (पृ० ९३ इ०वे०)

बा० जब आप के समक्ष चार अथवा पाँच वस्तुयें होती हैं, तो आप उनमें से एक का चुनाव कैसे करते हैं।

प्र० (८१) मैं समझा। किन्तु आप एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति पर वरीयता क्यों देते हैं ? (पृ० ९४ इ० वे०)

बा० गुणों के कारण। यदि एक व्यक्ति में अच्छे गुण हैं, तो उसे वरीयता दी जाती है। किसी व्यक्ति को अच्छे गुणों वाला बनाया भी जा सकता है।

प्र० (८२) आपका तात्पर्य किस प्रकार के गुणों से है ? (पृ० ९४ इ०वे०)

बा० सहानुभूति, उदारता, सेवा, सद्विचारों का चिन्तन, अच्छे विचार आदि कुछ हैं।

पी० आर० मैं आपको एक बात स्पष्ट कर दूं। हमारे मिशन में अनेकों ऐसे लोग हैं जो बहुत ही उच्च स्थिति को प्राप्त हैं, किन्तु वे प्रशिक्षक नहीं हैं। और ऐसे अनेकों प्रशिक्षक भी है, जो व्यवहारिक रूप में आध्यात्मिक प्रगति सोपान की प्रथम सीढ़ी पर हैं। अतएव किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक स्तर का उसके प्रशिक्षक बनने हेतु होनेवाले आवश्यक गुणों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। व्यक्तिगत रूप में मैं विश्वास करता हूं, और जैसा कि आपने बाबू जी को कहते सुना है—एक प्रशिक्षक में जो निहित गुण होना आवश्यक है, वह है आध्यात्मिकता के प्रति निष्ठा। यदि यह है, तो बाबू जी अन्य गुणों का अपनी शक्ति से समावेश करा सकते हैं। मेरा विश्वास है, यह पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण प्रशिक्षक में आधारभूत गुण हैं।

प्र० (८३) क्या एक प्रशिक्षक दूसरे प्रशिक्षक को पूजा दे सकता है, और तुरत इसके पश्चात उससे प्राणाहुति प्राप्त कर सकता है ? (पृ० १८० गा०इ०)

पी० आर० हाँ, ऐसा किया जा सकता है।

प्र० (८४) जब एक प्रशिक्षक तीव्र ज्वर आदि से उग्र रूप में रोगग्रस्त है, और उस समय कोई उसके पास आता है, तो क्या वह उसे पूजा दे सकता है ?

(पृ० १८४ गा०इ०)

पी० आर० नहीं। मैं आप सभी लोगों से प्रार्थना करता हूं, कि आप विचार करें और इस सिद्धान्त को बाबू जी के लिये भी लागू करें। जब बाबू जी अस्वस्थ हों, विश्राम कर रहे हों, हमें साक्षात्कार अथवा पूजा के लिये उन्हें कष्ट नहीं देना चाहिये। और सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि उनकी उपस्थिति में, बिना उनकी जानकारी तथा अनुमति के हम ध्यान में न बैठें।

यदि आप आग के समीप बैठें, आपको उष्णता का अनुभव होगा, यदि आप बर्फ के समीप बैठे, आपको ठण्ढ का अनुभव होगा, तो जब आप एक ऐसे व्यक्ति के समीप बैठे जो आचरण एवं शिष्टता में पूर्ण है, आप में प्राणाहुति का संचार क्यों नहीं होगा।

—लाला जी

बाबू जी विदेशों में :

प्र० (८५) बाबू जी, आप डेनमार्क क्यों आये हैं ? (पृ० ८४ इ०वे०)

बा० अपने साथियों को एक अच्छी वस्तु देने के लिये। वे भी मानव हैं। अन्यथा भारत में ही हमारे पास पर्याप्त क्षेत्र हैं। किन्तु चूँकि यह एक अच्छी वस्तु है, और यहाँ के निवासी भी मानव हैं, उन्हें भी इसमें हिस्सा मिलना चाहिये। इसीलिये मैं डेनमार्क आया हूं।

प्र० (८६) डेनमार्क के बारे में आपके क्या बिचार है ? मेरा तात्पर्य है यूरोप के शेष भाग की तुलना में ? (पृ० ८४ इ०वे०)

बा० सभी देश अच्छे हैं, यदि वहाँ के लोग प्राकृतिक नियमों का पालन करें। यदि डेनमार्क के निवासी प्राकृतिक नियमों का पालन करते हैं, तो डेनमार्क अन्य देशों से कहीं सुन्दर होगा।

प्र० (८७) हाँ, किन्तु डेनमार्क के सम्बन्ध में क्या आपकी कोई भविष्यवाणी नहीं है ? (पृ० ८५ इ० वे०)

बा० नहीं, मैं इसका विचार नहीं करता हूं। यदि यह स्वतः आता है, तो ठीक है। मैं इस पर विचार नहीं करता। यह मेरा कार्य नहीं है।

प्र० (८८) नहीं ? किन्तु मैंने आपकी पुस्तक में आपके भावी कल्पना-लोक का कुछ अभिलेख पढ़ा है। (पृ० ८५ इ०वे०)

बा० हाँ, जब मैं उस स्थिति में था, तो मैंने उसके बारे में लिखा था। या जब इस प्रकार की बातें प्रत्यक्ष मेरे समक्ष उतरती है तब मैं उनके बारे में लिखता हूं। मैं भावी कल्पना-लोक अथवा भविष्य-वाणी के लिये प्रयास नहीं करता।

पी० आर० आप जान लें, वे तब लिखे गये थे, जब बाबू जी अति चैतन्यावस्था में थे, जिसे वे इस कार्य के लिये अपने ऊपर लाना या उतारना सामान्यतः नहीं चाहते, क्योंकि यह भय रहता है कि यह सस्ते प्रकार की फलित ज्योतिष अथवा भविष्य-वाणी के रूप में बिगड़ सकती है। उनका मूल कार्य है मनुष्य का पुनर्उद्धार, रूपान्तरण। अपने कार्य-क्रम में कभी-कभी

वे अतिचेतन्यावस्था या अवतरण अनुभव करते हैं, और तब वे भविष्य-वाणी हेतु सामग्री अथवा भविष्य के लिये विचार खोजते हैं। साधारणतः भविष्य-वाणियाँ नहीं की जाती है।

प्र० (८९) किन्तु क्या डेनमार्क के भविष्य से सम्बन्धित आपकी कोई परिकल्पना नहीं है ? (पृ० ८५ इ०वे०)

बा० अब आपने विचार करने की वस्तु दी है। कुछ समय बाद आप इसके बारे में मुझसे पूछ सकते हैं।

प्र० (९०) कृपया इंग्लैण्ड में सहज-मार्ग के कार्य पर अपना विचार प्रकट करें ? (पृ० ७६ गा०ह०)

बा० इंग्लैण्ड में मेरे लिये कोई कार्य नहीं है। मैं विमुक्त कर दिया गया हूं।

प्र० (९१) क्या कारण है, बाबू जी ? (पृ० ७६ गा०ह०)

बा० बुद्धि जीवता पर अत्यधिक अनुराग।

प्र० (९२) यह दोषयुक्त क्यों हैं ? (पृ० ७६ गा०ह०)

बा० अच्छा, मैं बता रहा हूं। मैं ईश्वर पर अवलम्बित हूं आप बुद्धि से चिपके हैं। प्रत्येक दूषण को पूर्ण रूप से नाश किया जा सकता है, यदि उचित मानसिकता हो। बौद्धिक रूप से अंग्रेज बड़े अच्छे लोग हैं, किन्तु उनमें आध्यात्मिक दिवालिया-पन है।

प्र० (९३) और आयरलैण्ड के बारे में बाबू जी ? क्या वहाँ कार्य हो सकता है ? (पृ० ७६ गा०ह०)

बा० यदि वे चाहें, तो हो सकता है। मैं आपको एक बात बता रहा हूं। भारत में माँ पालने पर से ही बच्चो को शिक्षा देती हैं, कि ईश्वर है। किन्तु, यहाँ हम क्या करते हैं ? यहाँ हमारे पास शेक्सपियर और मिल्टन है, और इसी प्रकार की अन्य वस्तुयें। इससे कोई समाधान नहीं होगा। एक व्यक्ति अति बुद्धिमान होता हुआ इसमें, अर्थात् आध्यात्मिकता में, कूद सकता है, किन्तु उस दशा में एक शक्ति उसे ऊपर खींच रही होगी और दूसरी शक्ति उसे नीचे ढकेलती रहेगी। इसलिये वे लोग बौद्धिक विलक्षणता में बहुत अच्छे हैं किन्तु आध्यात्मिकता में वे नितान्त दरिद्र हैं।

प्र० (९४) बाबू जी ! इसका समाधान क्या है ? (पृ० ७७ गा०ह०)

बा० अभ्यास ! हमारे पास समाधान रूप में अभ्यास है और इसे करना चाहिये। आपने बहुत अध्ययन किया, किन्तु आप की उपलब्धि क्या है ? केवल बौद्धिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है। क्रियात्मक बने और अब अभ्यास की ओर आवें। इसे करें और इसका परिणाम देखें।

प्र० (९५) बाबू जी ! क्या लन्दन का वातावरण उतना ही दूषित हैं, जितना पेरिस का ? हमें बताया गया है कि पेरिस में जो कुछ है, इतना दूषित है कि वहाँ का वातावरण निश्चय ही अत्यन्त दूषित होगा।

(पृ० ११८ इ०वे०)

बा० नहीं, पेरिस में बहुत ही अच्छा था। मुझे वहाँ कोई कष्ट नहीं हुआ। मैं तो पाता हूं कि जितना कुछ मैंने देख रखा है, उसमें लन्दन का वातावरण सबसे दूषित हैं।

प्र० (९६) बाबू जी ! यदि यह इतना दूषित हैं, तो क्या आप इसे स्वच्छ कर सकते हैं ? यदि आप ऐसा कर सकें तो यह एक अद्‌भुत कार्य होगा।

(पृ० ११८ इ०वे०)

बा० हाँ, मैंने आपको बताया है कि मैंने पहले ही इसे थोड़ा स्वच्छ कर दिया हैं। हो सकता है ५ प्रतिशत, किन्तु इससे अधिक मैं नहीं करूंगा। यदि लोग चाहते हैं तो उन्हें अवश्य ही प्रार्थना करनी चाहिये।

प्र० (९७) यहाँ सुहावना सूर्य-प्रकाश है, और आप बसन्त ऋतु में पधारे हैं, और हम ईश्वर के सम्बन्ध में विचार किये बिना नहीं रह सकते।

(पृ० ७१ इ०वे०)

बा० अच्छा, मैं आपको बताऊँगा। ये हम लोग है, जो अपने बुरे विचारों से एवं अनुचित कार्यो से सम्पूर्ण जगत को भ्रष्ट करते हैं। प्रत्येक विचार वायु-मण्डल में अपना छाप छोड़ता है। यदि कोई इसे पढ़ सकता है, तो वह देख सकता है कि वायु-मण्डल में बादलों से अधिक विचार तैर रहे हैं। अन्तर आप स्वयं देख सकते हैं, यदि आप किसी कसाई बाड़ा और गिरिजा घर अथवा मन्दिर में जायें। अन्तर दोनों स्थानों के विद्यमान विचारों के कारण होता है। हमारा कर्तव्य हैं कि हम संसार को उससे अच्छी स्थिति में छोड़े जैसा हमने यहाँ आने के समय इसे पाया था। तभी प्रकृति से सहयोग होगा। अब हम प्रकृति के विरुद्ध जा रहे हैं और इसीलिये यहाँ विनाश हो रहा है।

प्र० (९८) बाबू जी की शारीरिक उपस्थिति हमें प्रगति की ओर धकेलती है। क्या हम उनके प्रति राग उत्पन्न कर सकते हैं ?

(पृ० १३९ गा०ह०)

पी० आर० नहीं ! हमें इस प्रकार की आशक्ति नहीं रखनी चाहिये। बाबू जी की शारीरिक उपस्थिति आपकी प्रगति में धक्का लगाती है, ऐसा अनुभव अथवा भावना एक भ्रम है। यह केवल इस बात को दर्शाती है कि हम अभी भी स्थूल पदार्थों पर निर्भर है। मात्र बाबू जी की शारीरिक उपस्थिति हमारे लिये कुछ नहीं कर सकती। हम देखते हैं कि वे स्वयं ही अनेकों स्थूल पदार्थों पर निर्भर है, जैसे भोजन। हाँ आध्यात्मिकता में हम उनपर निर्भर है। इस लिये यदि आप यथार्थ आन्तरिक निर्भरता उत्पन्न कर सकते हैं, तो आपको बाबू जी के शारीरिक उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है।

प्र० (९९) तब बाबू जी यूरोप क्यों आते हैं ? (पृ० १३९ गा०ह०)

पी० आर० वे आते हैं, क्योंकि वे अपना कार्य अपने तरीके से करना चाहते हैं, यह 'उनका' कार्य है। वे जानते हैं, इसे किस प्रकार करना है।

प्र० (१००) इसलिये यह आवश्यक नहीं कि भारतवर्ष जाया जाये ?

(पृ० १३९ गा० ह०)

पी० आर० बाबू जी ने अपने पिछले सन्देश में भी लिखा है कि ऐसा करना आवश्यक नहीं होना चाहिये।

प्र० (१०१) पश्चिमी सभ्यता का अन्त कैसे होगा, क्या इसकी कोई परिकल्पना आपकी दृष्टि में है ? (पृ० ९५ इ०वे०)

आ० आधार परिवर्तित हो जायेगा। आधार अत्यधिक आध्यात्मिक हो जायेगा।

प्र० (१०२) किन्तु यह परिवर्तन कैसे होगा ? (पृ० ९५ इ०वे०)

बा० पद्धति का अनुसरण करने से, अच्छे विचार रखने से। मैं आपको बताऊँ, यह दैवी कार्य है, इस परिवर्तन हेतु कोई दैवी हाथ काम कर रहा है, क्योंकि कोई १० या १५ वर्ष पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी। किन्तु मैं अब यहाँ इस यूरोप में इसे अनुभव कर रहा हूं। कुछ

परिवर्तन हो रहा है। लोग भौतिक जीवन से ऊब गये हैं। इसलिये वे ऐसी वस्तु से प्राकृतिक रूप में चिपक रहे हैं जिसका आधार आध्यात्मिक है।

प्र० (१०३) क्या इन सबका नाश होना है ? मेरा तात्पर्य पश्चिम से है।
(पृ० ९५ इ०वे०)

पी० आर० नहीं, नहीं। यह इस प्रकार नहीं है। किसी भी उद्योग में जो सहकारी होते हैं, साथ ले लिये जाते हैं, जब कि विरोधी अथवा असहयोगी आगे मार्ग में साथ नहीं लिये जाते। आप इसे विनाश कह सकते हैं। लेकिन इसे आप अन्य धरातल का स्थानान्तरण भी तो कह सकते हैं। इस प्रकार जो दैवी योजना का सहयोगी नहीं होता, सहयोगी बनने की अवस्था प्राप्त होने तक परिवर्तित होते रहते हैं। इस परिवर्तन को आप विनाश कह सकते हैं, आप इसे रूपान्तरण कह सकते हैं। जब आप एक परमाणु को खण्डित करते हैं, तो बतायें कि क्या परमाणु नष्ट हो जाता है ? अथवा रूपान्तरित हो जाता है ? दोनों सही हैं। अतएव हम जिसे सामान्यतः विनाश कहते हैं, हो सकता है वह भलाई के लिये रूपान्तरण हो। एक शिशु वयस्क में रूपान्तरित हो जाता है। क्या यह शिशु का विनाश है ? मानव अस्तित्व के एक अवस्था से दूसरे अवथा को यह एक संचरण हैं। और सब मनुष्य वृद्ध हो जाता है, तो उसका यौवन एक अर्थ में नष्ट हो ही जाता है। किन्तु हम इसे विनाश नहीं समझते, क्यों कि हम संचरण को तिल-तिल परिवर्तित होते देखते रहते हैं। संचरण को निस्सारता के क्रमिक स्तरों को जब हम नहीं देख पाते या देख सकते हैं तो प्रत्येक अवस्था के अन्त को हम विनाश के रूप में देखते हैं।

प्र० (१०४) बाबू जी ! मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहूंगा। आपने अपने दिल्ली सन्देश (३० अप्रैल १९८०) में लिखा है कि भारत में आप अन्तर्दृष्टि के लिये अन्तरीय का प्रयोग करते हैं, जब कि पश्चिम के लोग अन्तर्दृष्टि के लिये अपने आपका प्रयोग करते हैं। क्या आप इसकी व्याख्या कर सकते हैं ? (पृ० १२१ गा०ह०)

बा० यह स्वतः व्याख्याकारी हैं।

प्र० (१०५) हाँ ! किन्तु, हो सकता है मैं इसे समझने के लिये उतना तेज नहीं हूं। (पृ० १२२ गा०ह०)

बा० चूँकि आपके पास उस प्रकार का विवेक नहीं है। अतः आप तेजस्वी हैं।

ह० आप इस पर ध्यान करें और आपको परिणाम मिलेगा।

ध्यान :

प्र० (१०६) मुझे बताया गया था कि जब आप प्राणाहुति ग्रहण करने का प्रयास कर रहे होते हैं, आपको हृदय पर ध्यान करना होता है। क्या यह सही है। (पृ० ९० इ०वे०)

पी० आर० हाँ, हम हृदय में प्रकाश पर ध्यान करते हैं। मेरे बाबू जी कहते कहते हैं कि ध्यान के लिये हृदय स्थान सर्वोत्तम है क्योंकि हृदय ही जीवन का केन्द्र है। यही भावना का भी केन्द्र है। और परम्परागत सभी धर्मों में, ईश्वर की हृदय में ही आसीन होने की मान्यता है। ध्यान के लिये अन्य बिन्दु भी है। किन्तु मेरे बाबू जी कहते हैं कि उनके मुख्यतः भौतिक प्रभाव सीमित होते हैं। जबकि हम अपते सहज-मार्ग में मानव के रूपान्तरण हित सम्पूर्ण आध्यात्मिक प्रभाव के प्रत्याशी रहते हैं।

प्र० (१०७) किन्तु क्या त्रिकुटी अधिक उपयुक्त नहीं है ? (पृ० ९१ इ०वे०)

पी० आर० निश्चित रूप में यह अधिक विख्यात तथा ज्ञात है। भागवत् गीता में भी आज्ञाचक्र का उल्लेख है। किन्तु मेरे बाबू जी के अनुसार आज्ञा-चक्र मानव प्रणाली में शक्ति वितरण करने का स्थल है। इसलिये उस बिन्दु पर ध्यान करने से हमें शक्ति प्राप्त हो सकती है, आध्यात्मिक प्रगति नहीं। एक अन्य धारणा भी हैं कि आज्ञा-चक्र सन्यासी और योगी के लिये उपयुक्त है, जिन्होंने जीवन के मोह का त्याग कर दिया है किन्तु गृहस्थों के लिये उपयुक्त नहीं है।

प्र० (१०८) हम अपनी पसन्द की किसी अन्य वस्तु पर ध्यान क्यों नहीं कर सकते ? प्राचीन मूल सूत्रों में विशेष रूप से अनेक वस्तुओं के बारे में कहा गया है, जैसे आकाश, सागर आदि। मैं सागर पर ध्यान करना श्रेष्ठतम समझता हूं। मेरे लिये यह अनन्त का यथार्थ भाव उत्पन्न करता है। क्या मैं ऐसा कर सकता हूं ? (पृ० १०९ बी०ई०)

बा० भाई ! इसका निश्चय आप स्वयं करें। मेरे गुरु द्वारा विकसित पद्धति में हम हृदय में प्रकाश पर ध्यान करते हैं। वह भी कल्पना मात्र।

प्र० (१०९) क्या मैं सागर पर ध्यान कर सकता हूं ? (पृ० १०९ बी०ई०)

बा० मेरा विचार हैं कि यदि आप किसी पदार्थ पर ध्यान करते हैं, तो प्रतिफल में आपको उसका तत्व प्राप्त होना ही चाहिये। इसलिये यदि आप सागर पर ध्यान करते हैं तो आपको लवण की प्राप्ति होगी।

प्र० (११०) हमें हृदय पर ध्यान क्यों करना चाहिये ? मैं अपने लिये सिर पर ध्यान करना अधिक उपयुक्त समझता हूं। (पृ० ७१ इ०वे०)

बा० यही नियम है। हमारे लिये यही एक नियम है।

प्र० (१११) बाबू जी ने कहा है कि अभ्यासी उनके आकार पर ध्यान कर सकता है। (पृ० १०६ गा०ह०)

पी० आर० यह केवल उन अभ्यासियों के लिये है, जो उनमें इतने अनुरक्त हो चुके हो कि वे ही उनके हृदय में प्रकाश है।

प्र० (११२) ध्यान आरम्भ करने के लिये व्यक्ति की क्या आयु होनी चाहिये ? (पृ० ८४ स०मा०यू०)

पी० आर० मैं इसकी कुछ अधिक ही व्याख्या करुंगा। आरम्भ करने के लिये हम कितने युवा हैं ? हमारे बाबू जी के गुरू, लाल जी ने कहा है कि यह तो गर्भ धारण के क्षण से ही आपको अध्यात्मिकता आरम्भ करनी चाहिये। किन्तु इसका ज्ञान होना असम्भव है कि गर्भ कब स्थापित होता है। सबसे सुन्दर यही होगा कि गर्भवती महिला को प्राणाहुति प्रदान की जाय, किन्तु केवल माता के हृदय पर, क्यो कि वहाँ से शिशु अपना अश स्वयं खींच लेता है। जिस प्रकार वह भौतिक शक्ति प्राप्त करता है, उसी प्रकार वह आध्यात्मिक तत्व भी प्राप्त कर लेता है। इतने पूर्व अवस्था से प्रारम्भ करने का लाभ यह होता है कि अपने स्वयं के संस्कार निर्मित करने के पूर्व ही आपने बालक को आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करा दिया। बाबू जी ने प्रायः कहा है कि बाल्यावस्था में प्रारम्भ करना आध्यात्म में सर्वोत्तम है। इसके दो कारण हैं। प्रथम तो जब हम अधिक उम्र के हो जाते हैं, हमारे पास पूर्व संस्कारों का भारी बोझ रहता है, जिसे उन्हें स्वच्छ करना पड़ता है और जो

प्रवृत्ति बनकर आरम्भ होती है, वही स्वभाव बन जाता है, जीवन का सांचा बन जाता है, जिसे हम बिरले ही परिवर्तित कर सकते हैं। दूसरा कारण जो अत्यधिक महत्व पूर्ण है, यह है कि हम नहीं जानते कि हमें कितने दिन जीवित रहना है। इसीलिये, जब कोई बाबू जी से पूछता है—"जीवन का आचरण कैसा होना चाहिये, जीने का सर्वोत्तम मार्ग कौन सा है?" तो बाबू जी का कथन है—"इस प्रकार जीओं मानो अगले ही क्षण मृत्यु होनी हैं।"

प्र० (११३) किसी को ध्यान आरम्भ करने के पूर्व उसकी भौतिक आयु क्या होनी चाहिये और एक प्रशिक्षक से पूजा लेने के पूर्व उसे किस आयु का होना चाहिये? (पृ० ९० स०मा०यू०)

पी० आर० सहज-मार्ग में बाबू जी ने कहा है कि १८ वर्ष के नीचे नहीं। यह उसका विरोध नहीं करता, जो कुछ मैंने इसके पूर्व कहा है यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में ऐसा लग सकता है। कारण यह है कि जब आप एक गर्भवती महिला को प्राणाहुति देते हैं, तो आप शिशु को प्राणाहुति नहीं देते, बल्कि आप माता को प्राणाहुति देते हैं। और जब शिशु जन्म लेता है, और माता-पिता पहले से ही आध्यात्मिक जीवन-व्यतीत कर रहे होते हैं, तब शिशु स्वयंमेव वैसा उचित वातावरण प्राप्त कर लेता है, जो उसके भावी जीवन-यात्रा में सहायक होगी। अब, कल्पना करें, कि माता-पिता आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ नहीं किये हुये हैं, और शिशु वयस्क होता जा रहा है। ऐसी दशा में, हम उस समय तक प्रतीक्षा करते हैं, जब तक कि बालक अथवा बालिका यह न जान लें कि वे किस तत्व के शोधी हैं, और जो मार्ग उन्हें मिला है, वह उन्हें वहाँ तक ले जायेगा। उनके पास यह विवेक होना चाहिये।

प्र० (११४) इसलिये विवेक का होना आवश्यक है? (पृ० ९१ स०मा०यू०)

पी० आर० साधारणत: १८ वर्ष की आयु होनी चाहिये। यद्यपि उन स्थितियों में जहाँ इस आयु के पूर्व से ही प्रगति अच्छी है, यह और पहले भी हो सकता है। यहाँ तक कि १२, १३, १४ वर्ष के व्यक्तियों को भी हमने सम्मिलित किया है।

प्र० (११५) ध्यान में व्यक्ति को क्या परिकल्पनायें तथा अनुभूतियाँ होती है? (पृ० १५६ इ० वे०)

बा० परिकल्पना अनावश्यक है, और सत्य कहा जाये तो आध्यात्मिक प्रगति में इन सूचकों का कोई मूल्य नहीं। परिकल्पना कुछ और नहीं, बल्कि ताले में बन्द वह संस्कार है, जिसे सफाई के माध्यम से धरातल पर प्रगट होने दिया जाता है। इसलिये जो कुछ परिकल्पना में बाहर आता है. वह कुछ और नहीं, बल्कि हमारे अपने ही पूर्व विचारों एवं कर्मों से हमारे भीतर है निर्मित पूर्व संस्कार है। आध्यात्मिक जीवन में परिकल्पना का कोई मूल्य नहीं है।

प्र० (११६) यदि एक अभ्यासी अनेकानेक वर्षों से ध्यान करता चला आ रहा हो, तो क्या साधना सरल हो जाती है या विचार फिर भी आते रहते हैं ?
(पृ० ७८ गा०ह०)

बा० विचारों की तीव्रता घट जाती है, किन्तु एक दिन में नहीं। ध्यान का समय बढ़ायें और एक घंटा तक ले जायें। तब परिणाम देखें।

प्र० (११७) यह बहुत कठिन है। (पृ० ७८ गा०ह०)

बा० केवल इसलिये कि आप कर नहीं रहे हैं। मैं सरलता से कर सकता हूं। मैं कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं हूं, और यदि मैं कर सकता हूं तो आप भी कर सकते हैं।

प्र० (११८) जब, ध्यानावस्था में, हम विचार इत्यादि से अशान्त हो जाते हैं, उस समय हम पुनः अपने हृदय में प्रकाश पर अपना ध्यान वापिस कैसे ले जायें ?
(पृ० १०६ गा०ह०)

पी० आर० एक ही मार्ग है। जब आप जान जायें, कि आपका ध्यान हृदय में प्रकाश से हटकर कहीं और चला गया है, तो अपने ध्यान को पुनः हृदय में स्थित प्रकाश पर लायें। बिना बल प्रयोग के ऐसा करें। बाबू जी ने कहा है कि हमें अन्य बिचारों की अवहेलना करनी चाहिये। जब ध्यानावस्था में अन्य विचार विघ्न उपस्थिति करते हैं, तो यह हमारा मनोयोग ही है, जो उन बिचारों को विघ्न उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान करता है। उनके पास उनकी अपनी कोई शक्ति नहीं रहती। इसलिये, यदि उनकी अवहेलना कर दी जाय, तो वे स्वतः समाप्त हो जाते हैं। बाबू जी ने कहा है कि हमें इन विचारों के साथ बिल्कुल बिन बुलाये मेहमानों की भांति व्यवहार करना चाहिये। उनकी ओर तनिक भी ध्यान न दें। वे स्वयं चले जायेंगे।

प्र० (११९) जब मैं ध्यान में बैठता हूं तो क्यों मुझमें उष्णता आ जाती है ?
(पृ० १३८ गा०ह०)

पी० आर० कभी-कभी आप ठण्ढ भी अनुभव करते हैं। इसका कोई अर्थ नहीं है। कभी-कभी यह नितान्त भौतिक भी हो सकता है। आपको इसे दैनन्दिनी में लिखना चाहिये और फिर भूल जाना चाहिये।

प्र० (१२०) जब हम लोग बाबू जी के साथ एकत्रित रहते हैं और सारा दिन साथ रहते हैं, तो क्या अपने निजी अभ्यास करना ठीक है ? उदाहरण के लिये ध्यान करना, यदि प्रातः काल हो अथवा सफाई करना यदि सन्ध्या काल हो ? (पृ० १३८ गा०ह०)

पी० आर० बाबू जी द्वारा निर्धारित पद्धति के अनुसार आप सदा प्रातः काल ध्यान करते हैं। यदि आप यहाँ सन्ध्या की पूजा कर रहे हैं, तब इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि आप पृथक रूप से सफाई करें। रात्रिकाल की प्रार्थना-ध्यान भी आपको सोने के पूर्व करनी चाहिये।

प्र० (१२१) कभी-कभी हम बीमार हो जाते हैं। उस समय हमें ध्यान की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। किन्तु इसकी आज्ञा नहीं है।
(पृ० १५७ गा०ह०)

ह० बाबू जी इस बात पर बल देते हैं कि जब आप सचमुच रोगग्रस्त हैं, उस समय आपको ध्यान नहीं करना चाहिये। आप ने कहा है कि उसी समय तो ध्यान की परम आवश्यकता होती है। यह भूल है, क्योंकि आप स्वस्थ्य होने के लिये ध्यान नहीं करते और न ही कोई शक्ति की वृद्धि के लिये अथवा सुख प्राप्त करने के लिये। ये सभी वस्तुयें अहंकार को सन्तुष्ट करती है। हमें ध्यान करना चाहिये लक्ष्य की प्राप्ति के लिये। यह उचित नहीं हैं कि रुग्नावस्था मे ध्यान की सहायता ली जाये। रोग भी, जैसा कि बाबू जी ने कहा है, भोग है। यह एक साधन है, जिससे हम अपने कुछ संस्कारों से छुटकारा पाते हैं। रोग स्वतः जायेगा। प्रकृति सहायता करेगी।

प्र० (१२२) क्या हमें अपनी अनुभूतियों के अध्ययन को अपनी दैनन्दिनी में अंकित कर लेना या लिख लेना चाहिये ? (पृ० १३७ गा०ह०)

पी० आर० आपको ऐसा करना चाहिये। बाबू जी चाहते हैं कि ऐसा किया जाये। बाबू जी की इच्छा है कि अभ्यासी ऐसा करें। लोग समस्याओं के बारे में पूछते हैं। यदि आप एक दैनन्दिनी भरते हैं, तो आप में

जो प्रगति होती है, उसे आप स्वयं ही देख सकते हैं कि किस विधि समस्यायें परिवर्तित एवं लुप्त होती रहती है, आदि आदि । यदि कोई वस्तु विभाजित कर दी जाती है, तब वह मात्र खण्ड रह जाती है। पूर्णता का अर्थ है अखण्ड बना रहना और जो अविभाज्यपूर्ण है, वह अखण्ड पूर्ण ही समर्पित करता है। और जो सम्पूर्ण समर्पित करता है, वह अपने इष्ट को सम्पूर्ण ही प्राप्त करता है।

प्र० (१२३) व्यक्तिगत पूजा की बात सामूहिक ध्यान से भिन्न है। अब तक जिन बातों पर हमने विवेचना की है, वास्तव में सामूहिक ध्यान से सम्बन्धित था व्यक्तिगत पूजा में ध्यान की समाप्ति पर, निजी विवेचना प्रायः सम्भव है । (पृ० १३७ गा० ह०)

पी० आर० हाँ, निस्सन्देह। वे निजी विवेचनायें हैं। उस समय क्या होता है, जब हम अकेले बैठते हैं ? मैं तो कहूंगा कि वहाँ भी अपने आप में विवेचना होती है। ओर वही विवेचना महत्वपूर्ण होती है।

प्र० (१२४) हृदय में प्रकाश की परिकल्पना कैसे की जाय ? क्या यह आवश्यक है ? (पृ० १०५ गा०ह०)

पी० आर० यह आवश्यक है।

प्र० (१२५) प्रकाश के बारे में क्या कहना है ? क्या हमें प्रकाश देखना चाहिये ? (पृ० ११० बी० ई०)

बा० मैं आपको बताऊं। यह केवल कल्पना है कि हृदय में प्रकाश है। यह एक प्रस्ताव है।

प्र० (१२६) किन्तु जब हम ध्यान करेंगे तो क्या प्रकाश देखेंगे ? (पृ० १११ बी०इ०)

पी० आर० कई लोगों ने अनुभव किया है कि वे अन्धकार देखते हैं, या ऐसा कुछ जो अन्धकार के अनुरूप होता है। मैं भी इससे भ्रमित हो गया था। एक संध्या मैं बाहर मैदान में बैठा था और आकाश की ओर देख रहा था। तत्काल नितान्त अन्धकारमय हो गया। अचानक मेरे विचार में आया कि आकाश में तो सूर्य का प्रकाश है, और फिर भी मैं केवल कालिमा अथवा अन्धकार देखता हूं। फिर एक अन्य विचार उत्पन्न हुआ, कि जब चन्द्रमा होता है, तब आकाश प्रदीप्त रहता है।

तब मेरी समझ में आया कि जब तक कोई ऐसा पदार्थ नहीं होता जो प्रकाश को प्रतिबिम्बित करें, तब तक प्रकाश अन्धकार के रूप में प्रकट हो सकता है। मेरे लिये यह एक दैवी प्रकाशन था। तब मैंने समझा कि क्यों हमारे अभ्यासियों में कई लोग अंधकार देखते हैं या अनुभव करते हैं। ऐसा इसलिये है कि इस पद्धति में ध्यान करने के लिये कोई वस्तु अथवा स्थूल पदार्थ नहीं है। हम केवल हृदय में स्थिर प्रकाश पर ध्यान करते हैं। अतएव अंधकार का अनुभव होना सही है।

बा० मैंने कहीं लिखा है कि प्रारम्भिक स्थिति में न तो प्रकाश होता है और न अंधकार। यह प्रभात के रंग सा होता है। नारदीय सूक्त भी यही कहता है।

प्र० (१२७) कुछ लोग ध्यान में शान्ति का गहन अनुभव क्यों नहीं करते ?

(पृ० १२४ ई०वे०)

बा० क्योंकि यद्यपि वे लोग सही रूप में ध्यान करते हैं, फिर भी वे अस्तित्व का अनुसरण करते हैं।

प्र० (१२८) ध्यान निश्चेष्ट होता है। आप कुछ भी नहीं करते। यह परिणाम कैसे दे सकता है ? (पृ० १४२ ई०वे०)

बा० हम हृदय पर यह समझते हुये ध्यान करते हैं कि वहाँ ईश्वरीय प्रकाश है। इसका अर्थ है, आप अपने हृदय क्षेत्र पर क्रीड़ारत है, जो स्वयं ही एक क्रीड़ा होते हुये एक कर्म है। आप जानते हैं कि आप ध्यान कर रहे हैं, इसका अर्थ हुआ कि आप कुछ कर रहे हैं, और वह स्थान जहां आप कार्य कर रहे हैं, हृदय भी वहाँ है। और आपको अपने लक्ष्य तक पहुंचना है, यह विचार भी विद्यमान है, और आप अर्द्ध-चेतन रूप में वहाँ किसी वस्तु की प्रतीक्षा भी करते हैं। इसका अर्थ हुआ आप जड़ नहीं है, बल्कि इतने व्यस्त हैं कि आप एक ही समय में काम कर रहे हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में दिखती निष्क्रियता कार्य-शीलता में समाहित हो जाती है।

प्र० (१२९) क्या आध्यात्मिक उन्नति के लिये उत्पीड़न आवश्यक है ?

(पृ० ७७ गा०ह०)

बा० नहीं। वे भी पीछे छूट जाते हैं। किन्तु मैं आपको एक बात बता रहा हूं। भारत में ऐसे अनेक संत हुये हैं, जिन्होंने ईश्वर के समक्ष यह निवेदन लेकर अपने को उपस्थिति किया कि विश्व की सारी पीड़ायें उन्हें प्रदान कर दी जायें। मुझे ऐसा कहने के लिये क्षमा करें, किन्तु आप अपनी तुलना उनसे कर लें।

प्र० (१३०) भावातीत ध्यान में मैंने एक बिन्दु से प्रारम्भ किया और इसके दूसरे छोर पर शून्य बिन्दु था, जिसकी मुझे कामना थी। अब मैं एक विशिष्ट बिन्दु पर पहुंच गया जहां मेरी प्रगति अवरूद्ध हो गयी। यदि मैं यथार्थ को स्वीकार नहीं करता तो मैं आगे प्रगति नहीं कर सकता था। (पृ० १७० ई० वे)

बा० इस अवरोध को एक उचित योग्यता प्राप्त गुरु दूर कर सकता था। यह गुरु का कार्य है। यदि आप जानजाते हैं कि आप रुक गये हैं तो जो कुछ आप कर सकते हैं, करें। यदि आप अपने आप कुछ नहीं कर सकते, तब गुरु को कहें। किन्तु अपने आप को गुरु एवं शिष्य दोनों नहीं बनना चाहिये। यही कठिनाई बन जाती है।

प्र० (१३१) मैं ध्यान करना छोड़ना चाहता हूं, क्योंकि ध्यानावधि में श्वांस की गति मन्द पड़ जाती है, जिससे शरीर में प्राण वायु मात्रा में कम पहुंचता है और मैंने अनुभव किया है कि यदि शरीर में प्राण-वायु की इतनी कमी आ गयी तो दीर्घायु बने रहने में कमी आ जायेगी।

(पृ० ६६ गा०इ०)

बा० देखें! आपका विचार सही है। ध्यानावधि में श्वांस प्रक्रिया अति मंद पड़ जाती है। इसलिये आप दोषारोषण सही है। मैंने ध्यानावस्था में स्वयं अपनी स्थिति का परीक्षण किया और पाया कि एक समय में श्वांस का चलना कई कई मिनट तक पूर्णतः स्थगित हो गया। यह मेरा अपना अनुभव है। तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि शरीर के भीतर अवश्य ही कोई ऐसा अंक होना चाहिये जो भीतर ही भीतर प्राणवायु (आक्सीजन) का निर्माण करता है। मैं नहीं जानता कि मेरा यह कथन सत्य है। हाँ ऐसा एक अंग या ऐसा ही कुछ है, जो शरीर

के भीतर ही भीतर प्राणवायु का निर्माण करता है। मेरे पास इसका पुष्टिकरण है। प्रमाणिकता मैंने पहले प्राप्त कर लिया है।

प्र० (१३२) शरीर में उस अंग के उपस्थिति का स्थापन कैसे किया जाये ?

(पृ० ६७ गा० ह०)

बा० यह आपका कार्य है। यह आप जैसे वैज्ञानिकों का कार्य है कि इस पर शोध करें और इसको ढूढ़ निकालें। यह मेरा निष्कर्ष है कि ध्यान वस्तुतः मानव जीवन की अवधि को बढ़ाता है।

ईश्वर अपने को तुम्हारे हृदय के भीतर छुपा लिया है और तुम्हें आगे खड़ा कर दिया है। तुम अपने को छुपा लो और ईश्वर को सामने ले आओ। यही वास्तविक साधना है।

—लाला जी

सतत् स्मरण

प्र० (१३३) क्या सतत् स्मरण स्वतः विकसित होता है अथवा, किसी व्यक्ति को इसके लिये साधना करनी पड़ती है ? (पृ० ७८ गा०ह०)

बा० यदि प्रेम की बाहुल्यता है, तो इसका विकास स्वतः हो सकता है।

प्र० (१३४) सतत् स्मरण का विकास किस प्रकार किया जाये ? क्या कोई मार्ग है ? (पृ० १२३ गा०ह०)

बा० हमें एक ही विचार पर चिन्तन करना चाहिये, केवल एक विचार पर—बारम्बार हृदय में भाव का होना अनिवार्य है। इसे मन्त्र की तरह दुहराना नहीं चाहिये। मैं नहीं जानता कि मैं सही हूं या नहीं।

ईश्वर ब्रह्मचारी से बीस कदम दूर रहता है
तथा सन्यासी से तीन कदम, जब कि वह
एक गृहस्थ के भीतर रहता है, जो
उन्हें अपने हृदय में बिठाये रहता है।

—बाबू जी

समाधि

प्र० (१३५) क्या विकास के लिये समाधि आवश्यक है ? (पृ० १०० गा०ह०)

बा० मैं आपसे एक बात कह रहा हूं। प्रत्येक व्यक्ति समाधि के लिये लालायित है, किन्तु विकास के लिये यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य आध्यात्मिक विकास से है। विकास के लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं सदा किसी आधार पर ही कुछ कहता हूं।

पी० आर० यदि समाधि की अवस्था स्वतः प्राकृतिक रूप में आ जाये तो ठीक है, किन्तु आपको समाधि के लिये श्रम नहीं करना चाहिये।

प्र० (१३६) क्या आप समाधि के बारे में कुछ बतायेंगे ? यह क्या है ?
(पृ० १०१ गा०ह०)

पी० आर० परम्परागत योग में समाधि योग की अन्तिम अवस्था मानी गयी है।

बा० यदि यह स्वतः आ जाये, तो बुरा नहीं है। किन्तु उसमें दैवी चेतना का होना आवश्यक है और उसकी सहायता से आपको अग्रसर होते रहना चाहिये। यदि दैवी चेतना नहीं है तो यह कुछ नहीं।

पी० आर० परम्परागत योग में भी समाधि की "पाषाण तुल्य मोक्ष" कहा गया है, अर्थात आप एक ऐसी चेतन अवस्था में चले जाते हैं, जो पाषाण तुल्य है। उक्त संस्कृत वाक्य का यही शाब्दिक अर्थ है। कुछ मोक्ष जैसी दशा के समान इसे कहा जाता है, किन्तु पाषाण तुल्य, जिसमें व्यक्ति पाषाण की तरह हो जाता है। वहाँ अनुभूति नहीं रहती चैतन्यता नहीं रहती, विचार नहीं रहता, संक्षेप में वहां कुछ भी नहीं रहता। हमारे सहज मार्ग में एक ऐसी दशा अथवा स्थिति है, जिसे "सहज-समाधि" कहा जाता है। यह एक ऐसी अवस्था होता है, जिसमें अभ्यासी अन्तरमन में पूर्णतया डूब जाता है, फिर भी वह वाह्य जगत

के प्रति सजग एवं सावधान रहता है इसे सहज-समाधि कहते हैं। यह एक स्वाभाविक अवस्था है, जिसे प्रभु की दशा के समान माना गया है। यह एक पूर्ण तल्लीनता तथा पूर्ण सजगता की संयुक्त दशा है। हमारे ध्यान करने की पद्धति में आपने देखा होगा कि जब आप ध्यान की गहनतम स्थिति में होते हैं, और सुदूर अन्तर्मन में तल्लीन होते हैं, तो भी जब बाबू जी कहते हैं कि "बस करो", तो आप तुरन्त जान जाते हैं। यदि यह परम्परागत वाली दूसरे प्रकार की समाधि होती, तो आपको बलपूर्वक जगना पड़ता।

●

प्राणाहुति मानव के भीतर की सुषुप्त अवस्था को नया जीवन प्रदान करती है और केवल मानव के लिये सुरक्षित एक अत्यन्त उच्चत्तम अवस्था के लिये उसे तैयार करती है।

—बाबू जी

श्रद्धा

प्र० (१३७) श्रद्धा कैसे प्राप्त किया जाये या स्वयं में विकसित किया जाय ?
(पृ० ७२ इ०वे०)

बा० सच कहा जाय तो श्रद्धा आवश्यक नहीं है। हमें जो करना है, वह है किसी पर विश्वास करना और आरम्भ करना। और तब जब आप अपने को प्रगति पर देखते है तो श्रद्धा स्वयमेव उत्पन्न होगी। अब मैं आपको बताऊं, लोग अन्तः करण के बारे में बहुत बातें करते हैं। अन्तः करण से हमें मार्ग-दर्शन मिलना चाहिये, किन्तु हम अपने इच्छानुसार अन्तःकरण को मार्ग दर्शाते हैं। अन्तःकरण क्या है ? वास्तव में इसके चार स्तर हैं, मन, बुद्धि, चिन्त और अहङ्कार। जहाँ ये सभी सतुलित हों और एक मूल विचार में समाविष्ट हों, वहीं वास्तविक अन्तःकरण है।

प्र० (१३८) श्रद्धा को क्या कहा जाये, यह एक वरदान है या इच्छा-शक्ति का कार्य ?
(पृ० १२५ गा०ह०)

बा० दोनों सही है।

प्र० (१३९) जब आप लक्ष्य तक पहुंचने की बात कहते हैं, तब आप कहते हैं कि श्रद्धा एवं दृढ़ संकल्प आवश्यक है। आप यह भी कहते कि लक्ष्य तक पहुंचने के लिये समर्पण आवश्यक है। अब दृढ़ संकल्प और समर्पण, इन दोनों में कौन पहले आता है ? क्या वे एक दूसरे के बाद आते हैं ? अथवा दोनों साथ-साथ आते हैं
(पृ० १२५ गा०ह०)

बा० वह वस्तु समर्पण है, किन्तु संकल्प को पहले आना है। सच पूछिये तो मेरे, विचार से वे एक ही तत्व है, किन्तु वे भिन्न रंग के भरते हैं।

पी० आर० मेरे विचार से यदि आप श्री बाबू जी के निजी जीवन पर दृष्टि डालें, तो आपको इसका समाधान मिल जायेगा। उन्होंने लिखा है कि जब वे प्रथम बार "लाला जी" के समक्ष आये थे, उसके पश्चात् उनकी दृष्टि "लाला जी" के अतिरिक्त किसी अन्य पर कभी गई ही नहीं। यह है समर्पण की स्थिति। अतएव जब समर्पण आ जाता है, तब यह अन्य सभी साधनों को अनावश्यक बना देता है।

प्र० (१४०) और क्या दृढ़ संकल्प या अचूक संकल्प इसके साथ रहता है ?

(पृ० १२६ गा०ह०)

पी० आर० संकल्प परिवर्तित हो सकता है। बाबू जी ने एक बार कहा था कि प्रारम्भ में संकल्प दुर्लभ होता है। आप उसे संवार कर सामान्य मानव संकल्प का रूप देते हैं। इसके पश्चात आप उच्चतर-मानवीय संकल्प या श्रेष्ठ मानुषिक संकल्प को प्राप्त करते हैं। और यदि सदगुरु की कृपा प्राप्त है तो व्यक्ति का संकल्प सम्बन्धित होता हुआ लगभग दिव्य संकल्प को छूने लगता है। सो साधन की प्रकृति परिवर्तित होती है, परन्तु समर्पण में परिवर्तन नहीं होता। अतएव अपरिवर्तनशील साधन के माध्यम से परमतत्व तक पहुंचने के लिये समर्पण ही मार्ग है।

प्र० (१४१) पूजा के तत्काल पश्चात विवेचन करने की अपेक्षा पूजा से अलग हटकर विचार-विमर्श करना क्या अधिक उचित होगा ?

(पृ० १३३ गा०ह०)

पी० आर० हाँ ! ऐसा होना चाहिये और तभी जब पूजा समाप्त हो जाये। जो आपको नहीं करना चाहिये, वह यह है, कि अभ्यासियों को व्यक्तिगत स्थिति की चर्चा इस प्रकार के सामूहिक सत्संग में नहीं करनी चाहिये। बाबू जी चाहते हैं कि, प्रत्येक पूजा-अवधि के पश्चात कुछ क्षण शान्त बैठे रहें, और अपने स्वयं की स्थिति पर विचार करें। यह आपको जानने में सहायक होगा कि आपकी स्थिति कैसी है। अभी यह कोई नहीं जानता कि उसकी स्थिति कैसी है। प्रत्येक अभ्यासी को ऐसा करना चाहिये। कुछ देर के लिये पूर्ण निस्तब्धता में बैठें, और अपनी स्थिति का स्वयं अध्ययन करने का प्रयास करें। आप जान सकें, इसके पूर्व अध्ययन आवश्यक है। अन्यथा यह काल्पनिक हो जाता है। और तत्पश्चात् बाबू जी द्वारा लिखित पुस्तकों का कुछ अंश पढ़ें और जो कुछ भी पढ़ा जाये, उस पर विचार-विनिमय करें। और कुछ नहीं। इससे सहज-मार्ग का समुचित ज्ञान प्राप्त करने में हम लोगों को सहायता मिलती है।

प्र० (१४२) अनेकों लोग अपने व्यक्तिगत समस्याओं के सम्बन्ध में प्रश्न उठाना चाहते हैं। ऐसे प्रकरन पर हमें क्या करना चाहिये ?

(पृ० १३४ गा०ह०)

पी० आर०

यदि वे आपसे प्रश्न करते हैं, तो आपको उनके उत्तर देने का प्रयास करना चाहिये। प्रश्न दो कारणों से उठते हैं। एक है स्थिति को सही ढंग से न समझ सकना। यह समझ की कमी के कारण होता है। प्रत्येक व्यक्ति कल्पना करता है कि सहज-मार्ग साधना अपना लेने से उनके समक्ष कोई समस्या नहीं उठनी चाहिये, उन्हें कोई सिर-दर्द या पेट का दर्द; या अन्य किसी प्रकार की व्यथा नहीं होनी चाहिये—कोई रोग नहीं। सहज-मार्ग साहित्य में इस प्रकार की कोई बात नहीं कही गयी है।

अतः जब एक व्यक्ति आता है और कहता है कि वह सहज मार्ग पद्धति के अनुसार तीन वर्षों से ध्यान कर रहा है, और आगे कहता है कि उसकी समस्यायें घटने के अपेक्षा बढ़ी ही है, तो स्पष्ट है कि उसे सहज-मार्ग पद्धति के सम्बन्ध में गलत धारणा है। यदि आप यह जानते हैं कि ये समस्यायें संस्कारों के कारण उठती है तथा क्लेश अथवा अनुभूतियों संस्कारों के भोगे जाने के कारण होते हैं, तब आप जो कष्ट या पीड़ा अनुभव करते हैं, उसका अधिक महत्व नहीं देगें। यह सब बहुत ही शीघ्र घुल जाता है। अब यदि आप इसपर बिचार करें कि आप बार-बार क्या अनुभव कर रहे हैं। उदाहरण के लिये यदि आप विचार करते जायं कि—"मैं पीड़ा में हूं ओह ! मैं पीड़ा में हूं" तो यह अपने आप में एक ध्यान हो जाता है, और इस प्रकार घटाने या कम करने की अपेक्षा कलेश की वृद्धि करता है और पीड़ा को पुष्ट करता है। कुछ बाते एकान्त में स्वतः विचारी जानी चाहिये। अब जब एक व्यक्ति प्रश्न करता है और आप उत्तर देते हैं, यह केवल प्रश्न का उत्तर देना है, वाद-विवाद नहीं। बाबू जी हम लोगों को कहते हैं कि जब हम एक साथ समूह में होते हैं, तो हमें अभ्यासी को व्यक्तिगत अनुभूति पर वाद-बिवाद नहीं करना है। यह इसलिये कि हो सकता है कि एक बैठक में बीस अभ्यासी सम्मिलित हों और प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति भिन्न हो सकता है। अब यदि कोई कहता है कि उसे अनुभव हुआ है कि वह एक पक्षी की तरह उड़ रहा है और अपनी शारीरिक चेतना खो दिया है, जब कि एक अन्य व्यक्ति कहता है कि उसने व्याकुलता का अनुभव किया है अथवा सिर में भारीपन का अनुभव हुआ या ऐसा ही कुछ, तो वह अभ्यासी हताश हो सकता है। वह सोच सकता है—"यह क्या है ? उसका अनुभव इतना अद्भुत है, जब कि मेरा इतना

भयंकर। यह ठीक नहीं है। यदि समझ सही है, तो हमें ज्ञात होगा कि दोनों अनुभवों का कारण संस्कार है।

प्र० (१४३) प्रेम के बारे में आपका क्या कहना है ? क्या यह आवश्यक है ?
(पृ० ११० बी०ई०)

बा० मैं आपको बताऊं। प्रेम अत्यधिक आवश्यक है। गुरु के प्रति अथवा ईश्वर के प्रति प्रेम का होना अनिवार्य आवश्यक है। किन्तु आध्यात्मिक प्रगति में एक स्तर आता है जब प्रेम को भी विलीन हो जाना चाहिये।

प्र० (१४४) यह कैसे हो सकता है ? मैं नहीं समझा। (पृ० ११० बी०ई०)

पी० आर० बाबू जी ने जो कहा है, उसका आशय यह है। हम गुरु से प्रेम करना प्रारम्भ करते हैं। किन्तु निश्चित स्तर पर पहुंचने के पश्चात तत्वतः गुरु और शिष्य का एकाकार हो जाता है। ऐसा शिष्य अनुभव करता है। ऐसे स्तर पर किससे प्रेम किया जाता है और कौन प्रेम करता है ? और जब आध्यात्मिकलय अवस्था आती है और तत्वतः दोनों एक हो जाते हैं, तब प्रेम वस्तुतः विलीन हो जाता है। बाबू जी के कहने का यही तात्पर्य है, जब वे कहते हैं कि अन्ततः प्रेम भी बिलीन हो जाता है।

●

मन का नियन्त्रण ही कर्म है, मन की नियन्त्रित स्थिति उपासना, और इसकी अनुभूति ही ज्ञान है।

—सत्य का उदय

समर्पण

प्र० (१४५) समर्पण क्या है ? (पृ० २५ इ०वे०)

बा० "मैं" की अनुपस्थिति समर्पण है। प्रथम वस्तु है ईश्वर के प्रति भक्ति द्वितीय सदा अवलम्बित अनुभव करना। मान लें आप ईश्वर को समर्पित हो चुके। यदि समर्पण यथार्थ है, तो सकल मानवता के प्रति समर्पण होगा।

प्र० (१४६) यदि हम समर्पित हो जायें और तब हमें विचार आये या रोगग्रस्त हो जायें, तो क्या हम कह सकते हैं कि ये सब बाबू जी हमें दे रहे हैं ? (पृ० १६१ गा०ह०)

पी० आर० हमारे साथ जो कुछ भी घटता है, वह सब हमारे संस्कारवश होता है। बाबू जी हमें प्रगति दे रहे हैं। हमें आध्यात्मिक प्रगति देने की प्रक्रिया में इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि सफाई की जाये और संस्कारों को, तथा भोगी को, जिस सीमा तक, एक अभ्यासी सहन कर सके, दूर किया जाये। बाबू जी ने मुझसे कहा है कि अभ्यासी को अपने सहन सीमा के अर्न्तगत संस्कारो को भोग लेना चाहिये। क्योंकि यह आध्यात्मिक प्रगति के लिये श्रेयस्कर होता है। मैं एक बात अपनी ओर से और जोड़ना चाहूंगा। यह तो स्पष्ट है कि रोग अथवा क्लेश प्राप्त करना सहज नहीं है, अन्यथा सन्तों को इसके लिये प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारी आध्यात्मिकता में वास्तव में एक ऐसी स्थिति आती है, जब हमें दुर्गति के लिये प्रार्थना करनी पड़ती है किन्तु तब आप उन्हें क्षणार्ध अधिक नहीं पा सकते, यदि वे आपके संस्कार में नहीं है। मेरी समझ से यह सर्वाधिक उत्साहवर्धक है, कि जब कोई व्यक्ति उस स्थिति को प्राप्त होता है, तो उसे दुर्गति के लिये वास्तव में प्रार्थना करनी पड़ती है। बाबू जी द्वारा दिये गये अब तक के समस्त वक्तव्यों में यह सर्वाधिक असंदिग्ध वक्तव्य है। हम सब अपने स्वास्थ्य इत्यादि की जाने की भय से भयभीत रहते हैं किन्तु जब आप एक विशिष्ट आध्यात्मिक स्तर पर पहुंचते हैं और आपको दुखों के लिये प्रार्थना करनी पड़ती है तो आप स्वयं अनुभव करेंगे कि पीड़ा प्राप्त करना कितना कठिन है।

प्र० (१४७) किन्तु क्या यह मानवता की सेवा हेतु नहीं है ?

(पृ० १६२ गा०ह०)

पी० आर० ऐसा हो सकता है। किन्तु जो कह रहा हूं, वह फिर भी उपयुक्त है, कि जब संस्कार में नहीं है, तो पीड़ा प्राप्त करना सहज नहीं।

प्र० (१४८) हम लोगों ने सूक्ष्मतम दुर्गतियों के तथ्यों पर वार्ता किया। किन्तु मृत्यु और वृहत्तम पीड़ा के बारे में क्या हो ? आप कैसे जानते हैं कि जीवन, बुद्धि इत्यादि हमें पुनः प्राप्त हो सकता है ? (पृ० १६२ गा०ह०)

पी० आर० बाबू जी ने दो बातें कही है। उच्चतम की प्राप्ति। इसी जीवन में प्राप्त करने का प्रयास करें। हम नहीं जानते हैं कि हमें कबतक रहना है। इसलिये बाबू जी कहते हैं—"इस प्रकार जीओं कि मानों अगले ही क्षण मरना है।" मान लें आप निश्चित रूप में जानते हैं कि आपको उदाहरणार्थ कल प्रातःकाल मरना है। ऐसी स्थिति में आप क्या करेंगे ? आप वही करेंगे जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिये आप सैर सपाटे में जाकर मदिरा नहीं पियेंगे। सम्प्रति हम एक विचित्र विचार धारा रखते हैं कि हम ८० अथवा १२० वर्ष तक जीवित रहेंगे। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि जीवन अनिश्चित तथा क्षण-भंगुर है। हमारे जीवन की अवधि अनिश्चित है। इसलिये आध्यात्मिक अभ्यास अर्थात ईश्वर की खोज नितान्त आवश्यक समझ कर करनी चाहिये। यह कोई क्रीड़ा की वस्तु नहीं। इसे अत्यन्त ही आवश्यक नितान्त उपयोगी समझकर ही करना पड़ेगा। "कल प्रातः काल हो सकता है, मैं जीवित न रहूं। आप ही, इसी संध्या काल में ईश्वरानुभूति कर लेने दें। "यदि इस प्रकार की चितवृति है, तो आपको प्राप्ति होगी। बाबू जी कहते है—"ईश्वरानुभूति क्षणमात्र का कार्य है। अपना सिर इधर घुमाये, और सब कुछ हो गया।"

प्राणाहुति

प्र० (१४९) प्राणाहुति क्या है ? (पृ० ६९ ई०वे०)

बा० मनुष्य का रूपान्तरण करने में दैवी शक्ति का उपयोग प्राणाहुति है।

प्र० (१५०) आप क्या प्राणाहुति के सम्बन्ध में कुछ बता सकते हैं ?
(पृ० ७९ ह०ति०)

पी० आप० हमारा विश्वास है पाणाहुति हमारे पद्धति की एक अनुपम वस्तु है। बाबू जी के परिभाषा के अनुसार मानव के रूपान्तरण के लिये दैवी शक्ति अथवा ऊर्जा का उपयोग ही प्राणाहुति है। उनके अपने गुरु की खोज से ही यह सम्भव हो सकता है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को प्राणाहुति दे सकता हैं यदि दाता समस्त शक्ति के अनन्त श्रोत के सम्पर्क में बना रहता हो। और मेरे बाबू जी यह कार्य कर रहे हैं। और अपने स्वयं करने के अतिरिक्त उन्होंने प्रिसेप्टर, प्रशिक्षक अथवा उपदेशक कहे जानेवाले लोगों के लिये भी अपने नियन्त्रण के अन्तर्गत उपलब्ध उसी शक्ति का संप्रेषण करना, अपने पथ प्रदर्शन तथा निर्देशन में सम्भव कर दिया है।

प्र० (१५१) यह शक्ति जो संप्रेषित होती है, क्या स्थूल है ? (पृ० ८० इ०वे०)

पी० आर० यह कोई स्थूल ऊर्जा नहीं है। हमारे विश्वास के अनुसार यह अनन्त की ऊर्जा है, जो न स्थूल है, न रसायनिक। संक्षेप में यह कोई भौतिक पदार्थ, ऐसा हम विश्वास भी नहीं करते। यह सच है कि विज्ञान भौतिक पदार्थ तथा ऊर्जा का पृथक-पृथक विभाग मानता है। परन्तु ऊर्जा में आप स्थूल तथा सूक्ष्म के नाम से दो विभाग कर सकते हैं। हमारा विश्वास है कि जो संप्रेषित होता है, वह समस्त ऊर्जाओं में सूक्ष्मतम है। और इसे दैवी शक्ति कह सकते हैं, अनन्त की शक्ति कह सकते हैं, अथवा आप इसे सूक्ष्मतम चेतना भी कह सकते हैं। मेरे बाबू जी ने अपने शब्दों में—"मनुष्य के रूपान्तरण में दैवी शक्ति का उपयोग।"

प्र० (१५२) यह प्राणाहुति आप पर कैसे कार्य करता है ? क्या आप इसकी थोड़ी व्याख्या कर सकते हैं ? (पृ० ८० इ०वे०)

बा० यह दैवी शक्ति को खींच कर आप में ले आता है और तब यह क्रिया शील होती है। जब उस प्रकार की दैवी शक्ति आप में आने लगती है, तब यह कार्य करने लगेगा।

प्र० (१५३) परन्तु यह आप पर किस प्रकार कार्य करता है ? (पृ० ८१ इ०वे०)

बा० आपका तात्पर्य मुझसे है ?

प्र० (१५४) जी हाँ ! (पृ० ८१ इ०वे०)

बा० मुझे यह सन्तुलित मन की स्थिति में ले आता है। असन्तुलित प्रकृति लुप्त हो जाती है। ये प्राणाहुति के प्रभाव है।

प्र० (१५५) क्या आप अनुभव कर सकते हैं ? (पृ० ८१ इ०वे०)

बा० हाँ ! यदि हम संवेदनशील है, तो अनुभव कर सकते हैं। और मान लें आप अनुभव नहीं करते, तो जो परिवर्तन होता है, वह आपको प्राणाहुति के प्रभावों का विश्वास दिला देगा।

प्र० (१५६) औषधि में चिकित्सक कभी कभी ऐसी औषधि दे देते हैं जो वास्तव में कोई औषधि होती है नहीं, उसे 'प्लासेबों' कहा जाता है। क्या एक नितान्त नवसिखुआ को इस प्राणाहुति को 'प्लासेबों' समझ लेना उचित है ? अर्थात एक प्रकार की औषधि जिसका वह अर्थ ही नहीं जानता ? वह नहीं जानता है कि इसका प्रभाव कुछ है या नहीं, किन्तु वह प्रभाव की प्रतीक्षा करता है। (पृ० १०९ गा०ह०)

पी० आर० 'प्लासेबों' का प्रयोग साधारणतः रोगी की अधीरता दूर करने के लिये होता है। मैं समझता हूं, जो आप पूछ रहे हैं, वह इस प्रकार है कि—"क्या मैं इस प्राणाहुति को विश्वास के भरोसे पर ले सकता हूं" ? उत्तर हैं—हाँ" इसे लें और कुछ समय तक इसको परखें और यदि प्रतिफल न मिले, तो अभ्यास का त्याग कर सकते हैं।

प्र० (१५७) क्या आपके मतानुसार प्राणाहुति को अनुभूति व्यक्तिगत होती है अथवा आप इसकी व्याख्या किसी और रूप से करेंगे, कुछ सामान्य रूप में ? (पृ० १०७ गा०ह०)

पी० आर० यह सदैव व्यक्तिगत होता है।

ह० मात्र एक कारण से इसे व्यक्तिगत होना ही चाहिये। सर्वसाधारण रूप में यह व्यक्तिगत ही होता है। यद्यपि प्राणाहुति की शक्ति सर्वथा एक ही रहती है, किन्तु प्राप्तकर्ता व्यक्तिगत होता है, और विशिष्ट आकार के अनुसार, विशिष्ट मानसिकता के अनुसार तथा उसकी आध्यात्मिक स्थिति के अनुसार एक अनुभूति हर दूसरे से भिन्न होगी। अतएव प्राणाहुति की अनुभूति सदैव व्यक्तिगत ही होती है। प्राणाहुति एक वर्ग के लिये व्यापक हो सकती है, किन्तु उसकी अनुभूति व्यक्तिगत ही होगी। और सहज मार्ग में यह एक महत्वपूर्ण बात है। सहजमार्ग बहुत कुछ व्यक्तिगत और बहुत ही प्रगतिशील प्रणाली है। मैं समझता हूं सहज-मार्ग का अन्य पद्धतियों से यह एक बहुत महत्वपूर्ण अन्तर है।

पी० आर० मैं इसे बहुत ही साधारण रूप में समझाता हूं। प्राणाहुति तो एक ही है। हमारी अनुभूतियाँ हमारे संस्कार पर निर्भर है, जो अनुभूति के लिये यान्त्रिक का कार्य करते है। हमारे संस्कार हमारे ग्राह्यण पर भी प्रभाव डालते हैं। और इस बात पर निर्भर करते हुये कि हम कितने भावुक हैं जिस प्रकार का अनुभव प्राप्त होना चाहिये उस प्रकार का प्राणाहुति का अनुभव प्राप्त करने के लिये हम क्रमशः अधिक से अधिक समर्थ होते जाते हैं।

प्र० (१५८) आपने कहा है कि निर्भरता निश्चय ही आन्तरिक निर्भरता होनी चाहिये। क्या इस प्राणाहुति को बाह्य नहीं समझा जा सकता ?

(पृ० १४० गा०ह०)

पी० आर० नहीं। यह बाहर से कैसे आ सकता है ? यह पूर्णतया भ्रम है। हम नहीं जानते कि प्राणाहुति कहाँ से आती है। ऐसा कहना वैसा ही हुआ कि प्रेम बाहर से आता है। प्रेम कहां से आता है ? क्या हम जानते हैं कि प्रेम कहाँ से आता है या कहाँ जाता है ?

प्र० (१५९) क्या प्राणाहुति दिव्य धरातल से उपलब्ध है ?

(पृ० १४० गा०ह०)

पी० आर० एक प्रशिक्षक के पद से आपसे कहा गया है कि आप हृदय से प्राणाहुति दें। आपसे और कुछ नहीं कहा गया है। आपको अपने

हृदय से अभ्यासी के हृदय में प्राणाहुति देना है। इसलिये निकटतम श्रोत आपका हृदय है और निकटतम गन्तव्य अभ्यासी का हृदय है। यह आपके हृदय में "कहाँ से आया ? "यदि आप मुझसे यह पूछें, तो मैं कहूंगा कि यह सदगुरू के हृदय से आया। किन्तु किस स्थान से ? क्या शाहजहाँपुर से ? या किसी और स्थान से ?

यह अनन्त से आया है। प्रत्येक वस्तु अनन्त से आती है। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो अनन्त से नहीं आता है। अतएव प्राणाहुति एवं अन्य वस्तुओं में अन्तर क्यों लाते हैं ? बाबू जी का कथन है कि उनके लिये प्रत्येक वस्तु "लाला जी" के पास से आती है। समझने में भ्रम नहीं होना चाहिये। किन्तु यदि कोई सही ढंग से और यथार्थ रूप में अभ्यास कर रहा है, तो उसके लिये समझना भी आवश्यक नहीं है। वे लोग, जिनके पास बुद्धि नहीं है, क्या करेंगे ? अनेक लोग हैं जिनके पास पर्याप्त बुद्धि नहीं है। किन्तु वे भी आध्यात्मिकता में प्रगति करते हैं।

●

अपनी पूर्ण सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जीवन के दोनों पक्ष, भौतिक एवं अध्यात्मिक, साथ - साथ एक दूसरे के बराबर बढ़ते रहें।

— बाबूजी

प्रार्थना

प्र० (१६०) प्रार्थना क्या है ? क्या हमें प्रार्थना करनी चाहिये ?
(पृ० १०८ गा०ह०)

पी० आर० हमारे साहित्य में प्रार्थना छपी हुई है। बाबू जी ने कहा है कि जब हम प्रातः ध्यान प्रारम्भ करते हैं, तब हमें मन से प्रार्थना एक बार कर लेना चाहिये और फिर ध्यान में लग जाना चाहिये। प्रार्थना का दूसरा प्रयोग रात्रि में होता है। उस सयम भी हम उसे केवल मन में ही कुछ बार दुहराते हैं और तदोपरान्त प्रार्थना के भाव का मनन करते हैं। यह तो हुई वह प्रार्थना जो हमारे अभ्यास के नियमों में प्रकाशित है।

हम सामान्य अर्थों में भी प्रार्थना का प्रयोग करते हैं। यह मिशन के छपे हुये प्रार्थना की संदर्भित नहीं करता। यह आन्तरिकवृत्ति का निर्देशन करना है, जब जहाँ हम ईश्वर के समक्ष निवेदक की वृति से अपने को उपस्थित करते हैं, जब हम यह भी नहीं जानते कि हम किस वस्तु की याचना करते हैं। यहाँ तक कि जिस वस्तु के लिये हम प्रार्थना कर रहें हों, उस विचार का अस्तित्व भी नहीं रहना चाहिये। अतएव प्रार्थना एक मनोवृत्ति है, क्रिया कलाप नहीं।

प्र० (१६१) इस समय सम्पूर्ण विश्व में अनेकों सम्प्रदाय है। सहज मार्ग निश्चय रूप में कोई सम्प्रदाय नहीं है। किन्तु जब भी हम प्रार्थना के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं, भ्रम उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि आरम्भकर्ता विशेष रूप में भ्रमित हो जाता है कि यह प्रार्थना एक धार्मिक प्रार्थना है। जब कि ऐसा है नहीं। (पृ० १४३ गा०ह०)

पी० आर० इस सम्बन्ध में मैं एक अत्यन्त सामान्य वार्ता दूंगा। यह दुर्भाग्य है कि हम वस्तुओं से भयभीत रहते हैं। और इस भय का कारण होता है, एक विशेष सन्दर्भ में अथवा एक या अन्य वातावरण में किसी अप्रिय अनुभव का प्राप्त कर लेना। उदाहरणार्थ आप एक उपाहारालय में भोजन करते हैं, और बीमार पड़ जाते हैं, और आप उस उपाहा-

रालय में फिर कभी नहीं जाते । आप कहते हैं कि वह उपाहारालय बुरा है । आप एक प्रार्थना करते हैं और यदि इसके प्रति उत्तर आपको नहीं मिलता तो आप कहते हैं कि सभी प्रार्थनायें निरर्थक है, धर्म असंगत है । मैं इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखूँगा आपको कोई समस्या किसी पुरुष या स्त्री के कारण होती हैं, और तब आप सदा के लिये उस वर्ग से घृणा करने लगते हैं । इस प्रकार हमें ये भय एवं घृणा होती है । मनोवैज्ञानिक लोग इसके बारे में बहुत कुछ जानते हैं, और वे सभी मनः स्थितियाँ अनुभव पर आधारित है ।

सहज-मार्ग अनुभवों के मूल्य को मान्यता में देने की शिक्षा देता है, क्योंकि हमारे सभी अनुभव हमारे संस्कारों के भाग से उत्पन्न होते हैं । इस लिये यदि हम संस्कारों को अथवा संस्कारों द्वारा सृजित अनुभवों को अनुचित महत्व देते हैं तो हम सदा गलत निष्कर्म पर पहुंचेंगे और गलत निर्णय लेंगे । धार्मिक जीवन में गलत अनुभवों से इस प्रकार के भ्रम का उत्पन्न होना ही धर्म का सम्पूर्ण विरोध कराता है । मैं नहीं जानता कि इस स्थिति में धर्म का दोष है अथवा धर्म के नाम पर चलने वालों का । किन्तु स्पष्टतः जब लाखों लोग इसकी लपेट में हैं, और कहीं कुछ दोष है, और जहां सम्पूर्ण राष्ट्र अथवा सम्पूर्ण धार्मिक समाज अपने ही धर्म से घृणा करता हो, वहाँ यह विचार करने के लिये कि धर्म में कहीं न कहीं कोई दोष, इसका कोई न कोई आधार अवश्य होना चाहिये । किन्तु इस प्रकार का धर्म केवल एक मत अथवा धारणा है । धर्म दोषयुक्त क्यों हो जाते ? बाबू जी का कथन है कि ऐसा इस कारण होता है, कि वे समयानुसार व्यवहारीय नहीं होते । वे पाषाण-तुल्य जड़ हो जाते हैं, तथा मन्द पड़ जाते हैं और इसीलिये उस धर्म ने, जिसने कि उस समय जब से उसके संस्थापक ने उसकी स्थापना की थी—एक निश्चित समाज के लिये, एक निश्चित युग में—अब उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये लोगों की सेवा के योग्य वह नहीं रह जाता, क्योंकि वह मन्द हो चुका होता है । अतएव यदि धर्म लचीला नहीं रहता, तो चाहे जितना भी प्रभावकारी वह क्यों न हो, पचास अथवा सौ वर्षों के पश्चात वह प्रभावहीन हो जाता है । यही सहज मार्ग की विशिष्टता है कि लाला जी के समय से लेकर आज तक न जाने कितने अधिक मूलभूत विकास हुये हैं । इसलिये सहज मार्ग आज भी एक जीवित पद्धति हैं । यदि हम भी वहीं, उसी से चिपक जाते जो लाला जी

ने उस समय किया अथवा कहा था, तो आज सहज मार्ग होता ही नहीं। कल्पना करें, वृक्ष बढ़ते हैं, तो क्या होता है। जब वृक्ष बढ़ते हैं, छाल चिटकते हैं और गिर जाते हैं। आप वृक्ष पर सदा वही छाल नहीं देखते। इसी प्रकार जब हम बढ़ते हैं, हम वाह्य स्थिति (केंचुल) उतार फेंकते हैं, जिससे आन्तरिक जीविका की बढ़ान क्रमिक रहे। इसी बिन्दु पर धर्म दोषमुक्त हुआ होता है और चूंकि धर्म दोषयुक्त हो चुका होता है, हम कहते हैं कि प्रार्थना फलदायक नहीं है ऐसी प्रार्थना, जिसमें कुछ याचना या मांगना निहित है, सहज-मार्ग में अनुचित है। दुर्भाग्यवश इसके लिये अन्य शब्दावली प्रयोग हेतु है ही नहीं। प्रार्थना को अन्य रूप से क्या कहकर अथवा कैसे पुकारेंगे ? बाबू जी का कहना है कि प्रार्थना जब तथा जीव द्वारा वांछित परमतत्व के मध्य आध्यात्मिक सम्पर्क है। सहज-मार्ग प्रणाली में प्रार्थना की यही लघुतम परिभाषा है।

अब यह स्पष्ट है कि बाबू जी स्वयं हम सब की भांति वैसी प्रार्थना पसन्द नहीं करते। उस अर्थ में जो भी यूरोपवासी हैं। उनका कहना है कि प्रार्थना भिक्षाटन है। इसलिये यह स्पष्ट है कि जब बाबू जी प्रार्थना की बात करते हैं तो उनका संकेत उस प्रार्थना से नहीं होता जिसकी ओर हम उनका संकेत समझते हैं और जिससे हम भयभीत हैं। इसलिये पश्चिम के इन राष्ट्रों में जब हम प्रार्थना के प्रति घृणा को देखते हैं, तो यह स्पष्ट नहीं होता कि वह क्या है, जिसे आप वास्तव में पसन्द नहीं करते। हम सब जानते हैं कि सहज-मार्ग की प्रार्थना एक धार्मिक प्रार्थना नहीं है। इसलिये वह क्या है, जो आप पसन्द नहीं करते ? मेरा विचार है कि हम सहज-मार्ग प्रार्थना के इस सिद्धान्त को पसन्द नहीं करते कि हमें किसी भी वस्तु के लिये कुछ याचना नहीं करनी चाहिये और न किसी भी वस्तु हेतु भिक्षा माँगनी चाहिये। दूसरे शब्दों में, हम चाहते हैं कि प्रत्यक्ष रूप में बिना मांगे जांचे हम मांगते और याचना का काम कर लें, क्योंकि अहंकार से बचते हुये भाग निकलने का यही एक सरल मार्ग है। हम विना याचना किये प्रार्थना के प्रति यह विरोध वास्तव में अहंकार की एक समस्या है। बाबू जी ने आप लोगों को बतलाने के लिये मुझसे कहा है कि सच्चे एवं यथार्थ प्रार्थना में हम उन्हीं तत्वों को अपनी प्रगति में सहायता के रूप में परिवर्तित करते हैं, जो हमारी प्रगति में सहायक नहीं होते हैं। ऐसी

है सहज-मार्ग की प्रार्थना ! अर्थात हमारी आध्यात्मिक प्रगति और विकास के लिये परिस्थितियां परिवर्तित हो जाती है। सहज-मार्ग की प्रार्थना हमारे लिये यही करता है।

१९७२ से १९८० के बीच अपनी यात्रा के दौरान मैंने पाया है कि पश्चिम के लोगों में प्रार्थना के प्रति एक देखने योग्य प्रत्यक्ष परिवर्तन आ गया है। अब स्वीकृत अधिक है। ऐसा प्रार्थना एवं सफाई के कारण हुआ है। हम लोग स्वयं एवं प्रशिक्षकों द्वारा पर्याप्त सफाई करते हैं, जिससे समस्यायें घटती जा रही है। हम देखते हैं कि हमारी प्रगति के लिये परिस्थितियों के निर्माण में प्रार्थना ने निश्चय रूप से कार्य किया है। हमारे नेत्रों के सामने प्रार्थना की दक्षता का यह जीवन प्रमाण है, जो नितान्त स्पष्ट और प्रत्यक्ष है।

प्र० (१६२) जर्मनी में जब हम एक अभ्यासी को बताते हैं, तो हम उसे प्रार्थना के अर्थ समझाते हैं। हम इसे सुर मिलाना कहते हैं। इन महिला का कथन है कि "प्रार्थना" के बदले आप ऐसा ही कुछ क्यों नहीं कहते।

(पृ० १५८ गा०ह०)

पी० आर० ऐसा आप शौक से कर सकते हैं। आवश्यक यह है कि जैसे आप बच्चों को भोजन कराते हैं, जब आप कहते हैं—आओं, बच्चा कहेगा—"मैं खाना नहीं चाहता, मैं भूखा नहीं हूं" किन्तु यदि आप बच्चे का ध्यान चांद को दिखाते हुए अथवा सूरज को दिखाते हुए; हटा दें, तो वह आपके लिये बिना कोई समस्या किये चुपचाप खा लेगा। हम सब बच्चों की तरह है। लेकिन हम बच्चे नहीं हैं। हम वयः प्राप्त है, वयस्क हैं। प्रार्थना शब्द के प्रयोग के आप इतने विरोधी क्यों है, जब आप कर वही रहें हैं ? मैं 'प्रार्थना' के नाम से पुकारता हूं, आप अन्य कोई नाम से पुकारें। क्या है, मैं नहीं जानता। मान लें आप इसे कहते हैं "औरजेडक्ट" जर्मनी में एक नूतन शब्द। मैं नहीं जानता कि आपकी भाषा में ऐसा शब्द है भी कि नहीं। भाषा होती ही ऐसी है। उदाहरण के लिये 'भोजन' शब्द को लें। हिन्दी में इसे 'खाना' कहते हैं, आप इसे 'ज़्'एस्सेन' या ऐसा ही कुछ कहते हैं, जहां तक मैं जानता हूं इटली के लोग इसे 'मंजारे' कहते हैं। मैं समझता हूं क्रिया तो एक ही है।

प्र० (१६३) आप 'प्रार्थना' शब्द के प्रयोग कर बल क्यों देते हैं ?

(पृ० १५८ गा०ह०)

पी० आर० हम जिद्द नहीं करते कि आप इसे प्रार्थना ही कहें। हम इसको करने का आग्रह करते हैं। कृपया आप इसे करें, नाम चाहे जो रख लें।

प्र० (१६४) जब हम प्रार्थना करते हैं, तब क्या हमें अपनी पीड़ा बाबू जी को देना उचित है ?

(पृ० १६० गा०ह०)

पी० आर० यह एक भ्रम है। मैंने यह नहीं कहा है कि प्रार्थना में हम अपनी पीड़ा बाबू जी को अर्पित कर दें। मैंने एक परिभाषा दी थी। प्रार्थना एक प्रक्रिया है, जो स्व को परमतत्व से जोड़ती है। बाबू जी ने आपसे कहने के लिये मुझसे कहा है कि जो वस्तुएं हमारी प्रगति में प्रतिकूल अथवा असहायक होती है, उन्हें सहायक-साधन, बनाने में प्रार्थना हमारी सहायता करती है। प्रार्थना में, न हम कुछ देने की, और न ही कुछ प्राप्त करने की जिज्ञासा रखते हैं। यह सम्बन्ध स्थापित करने की एक पद्धति है। जब मैं समर्पण के सम्बन्ध में वार्ता कर रहा था, मैंने उस विधि की ओर संकेत किया था, जिससे हम अपने को खण्ड-खण्ड कर देते हैं और उसमें से कुछ तो समर्पित करते हैं अथवा अर्पण करने का प्रयास करते हैं, और शेष का जिसे हम अपने पास रखने के इच्छुक होते हैं, अपने ही पास रखने का प्रयास करते हैं।

प्र० (१६५) जब हम बाबू जी से प्रार्थना करते हैं, हमें कैसे करनी चाहिये ?

(पृ० १६० गा०ह०)

पी० आर० आप बिना प्रार्थना के प्रार्थना करें। प्रार्थना कुछ ऐसी वस्तु नहीं है, जो बार-बार दुहराई जायें। केवल एक प्रस्ताव अथवा भावना होनी चाहिये, वह भी अत्यन्त धूमिल। श्री बाबू जी ऐसा कहते हैं। आप जानते हैं, एक अत्यन्त भूखें व्यक्ति को भोजन मांगने की आवश्यकता नहीं होती। वह केवल एक विशिष्ट दृष्टि से आपकी ओर देखता है और आप उसे भोजन करा देते हैं। यदि वह बार-बार भोजन के लिये कहता रहे, तो आप बाधा ही अनुभव करेंगे, और तंग आकर उसे भिखारी की भांति भगा देंगे।

प्र० (१६६) आपने पहले कहा है कि यदि कोई रोगग्रस्त हो जाय तो उसे प्रार्थना करनी चाहिये। कृपया इसकी व्याख्या करें। (पृ० १४८ गा०ह०)

पी० आर० जैसा कि बाबू जी ने कहा है कि प्रार्थना वह दृष्टिकोण है, जो हमारी प्रगति के विरोधी होते हैं, कारणों को सहायक के रूप में परिवर्तित कर देता है।

प्र० (१६७) रोग दूर करने हेतु हमें प्रार्थना करनी चाहिये अथवा नहीं ?

(पृ० १४९ गा०ई०)

पी० आर० नहीं ! आप रोगग्रस्त रहते हुये भी आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं। आध्यात्मिक प्रगति का रोग से कोई सरोकार नहीं है। रोग तो केवल शरीर को होता है। प्रायः नित्य ही बाबू जी हम लोगों को बता रहे हैं कि महान सन्तों ने सदा यही प्रार्थना की है कि सम्पूर्ण विश्व के क्लेश उन पर आ जाये। बाबू जी ने हमसे बार-बार कहा—"मान ले आप सम्पत्ति उपभोग की इच्छा रखते हैं और इसके लिये प्रार्थना करते हैं, तो यह अनुचित है। यह सम्भव है कि आप बिना धनाढ्य बने ही सम्पत्ति का उपभोग कर लें।" ऐसा प्रायः होता है कि आपके पास वे वस्तुयें ही, जो एक धनी व्यक्ति के पास होती है—और यह भी संभव है कि जो कुछ धनी व्यक्ति के पास होता है बिना धनी व्यक्ति की समस्याओं में ग्रसित हुये उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। उसी प्रकार जब आप बीमार होते हैं तो बिना स्वास्थ्य की चिन्ता के आपके पास सब कुछ हो सकता है, जो एक स्वस्थ व्यक्ति के पास होता है। क्योंकि स्वास्थ्य भी चिन्ता का कारण बन सकता है। पश्चिमी स्नान-गृहों में आप देखते हैं कि सभी के पास भार तोलक यन्त्र हैं। लगता है स्वास्थ्य भी एक समस्या है। इसे भी नियन्त्रण में रखना होता है। इस प्रकार आप देखते हैं कि हम या तो इस ओर जा रहे हैं या उस ओर। मध्य बिन्दु क्या है ? यदि हम इसे बाबू जी पर छोड़ दें, तो वे हमारे लिये सबकुछ सन्तुलित कर देते हैं। यह समझ लेना महत्वपूर्ण है कि जब हम सहज-मार्ग के अभ्यासी हो गये हैं, और बाबू जी से कहते हैं कि हम उन्हें स्मरण करते हैं और उन्हें समर्पित हो रहे तो इसका अर्थ है कि हम जो कुछ भी सामान्यतः अपना समझते हैं, उसे उनको समर्पित कर देते हैं। इसमें हमारा स्वास्थ्य हमारी सम्पत्ति, हमारी

बुद्धि-प्रत्येक वस्तु सम्मिलित है। सब कुछ उनके संरक्षण में छोड़ दिया जाता है। यदि हम गहराई से विचार करें, तो अपने 'स्व' को खण्डित करने की यह वृत्ति, इस प्रकार हमें केवल अपनी पीड़ाओं को, अपनी रुग्नान्ता को, अपने दुःखों को एवं अपनी निर्धनता को ही समर्पित करता है, हमारा स्वास्थ्य, हमारी सम्पत्ति तथा हमारी बुद्धिमता हमारे हिस्से में रह जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि सहज मार्ग के व्यवहार में हम सत्गुरु के प्रति न्याय संगत नहीं रहते। हम किसके साथ अन्याय कर रहे हैं ? मैंने कहा है कि हम सहज-मार्ग के व्यवहार में अन्याय कर रहें हैं। हम किसके साथ छल कर रहें हैं ? वास्तव में हम स्वयं अपने साथ छल कर रहे हैं। जब हम अपना केवल एक अंश अर्पित करते हैं, हम अपने आप से निषेध कर रहे हैं। यदि हम अपने आपको सम्पूर्ण रूप में समर्पित कर देते हैं, तो हम क्या प्राप्त करते हैं ? हमारे सामान्य मानवीय सम्बन्धों में भी यही प्रचलन हैं। मैं आपको अपना शरीर देता हूं, किन्तु हृदय नहीं। मैं आपको अपनी सम्पत्ति देता हूं, किन्तु स्वयं को नहीं। मैं आपको अपनी बुद्धि देता हूं, किन्तु स्वयं को नहीं। यह एक बाजार बन जाता है, जहां हम क्षणिक, अनित्य, एवं मायावी लाभ के लिये अपने स्वत्व का टुकड़े-टुकड़े कर विक्रय करते हैं। वही खेल हम सहज-मार्ग में भी खेल रहे हैं और जो सर्वाधिक क्षतिग्रस्त होता है, वह है अपना 'स्व'। इससे सदगुरु का कोई सम्बन्ध नहीं इस प्रकार हम अखण्डता की आवश्यकता को समझते हैं। मेरा विचार है कि सत्य-निष्ठा की उत्पत्ति अविभाज्य से है—अविभक्त अर्थात एक पूर्ण संख्या —भावार्थ एक अविभाजित वस्तु।

●

गुरु, ईश्वर और मनुष्य को जोड़ने वाली कड़ी है। उसी के माध्यम से हम ईश्वर तक पहुंच सकते हैं।

—बाबू जी

सफाई

प्र० (१६८) बाबू जी ! सफाई की प्रक्रिया के लिये सर्वाधिक उपयुक्त समय कौन सा है ? (पृ० १०९ गा०ह०)

पी० आर० बाबू जी का कहना है कि जिस समय पूरे दिन का कार्य समाप्त हो जाये, वही उपयुक्त समय है।

प्र० (१६९) अभ्यासी यदि बहुत ही लगन वाला हो तो क्या सफाई तब भी आवश्यक है ? (पृ० १०९ गा०ह०)

पी० आर० मान लें आप बहुत ही रूग्नावस्था में हैं, तो क्या मात्र सच्चे लगन वाला रोगी बनने से आप रोगमुक्त हो सकते हैं ? पुनः स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये उचित औषधि का प्रयोग आवश्यक है।

प्र० (१७०) हम लोग सन्ध्या की सफाई के पूर्व प्रार्थना करते हैं। क्या यह ठीक है ? (पृ० १३७ गा०ह०)

पी० आर० एक बार प्रातः और एक बार रात्रि में प्रार्थना की आवृत्ति करने को हमें बताया गया है।

प्र० (१७१) यदि हम सायं-काल सफाई के पूर्व भी इसकी आवृति करें, तो क्या कोई हानि है ? (पृ० १३८ गा०ह०)

पी० आर० यह बाबू जी द्वारा निर्धारित नहीं है, और इसलिये हमें ऐसा नहीं करना चाहिये।

प्र० (१७२) हम प्रातः तथा सोने के पूर्व प्रार्थना करते हैं। क्या संध्या समय सफाई के पूर्व हमें प्रार्थना करनी चाहिये ? (पृ० १५९ गा०ह०)

पी० आर० निर्देश में इसका प्राविधान नहीं है। प्रार्थना शब्द के प्रयोग पर पूर्नविचार करते हुए निवेदन है कि अंग्रेजी भाषा में एक कहावत है कि किसी भी नाम से गुलाब मधुर सुगन्ध ही देता है। इसलिये मैं भी कहता हूं कि प्रार्थना को आप चाहे जिस नाम से पुकारे यह सदैव उतना ही प्रभावशाली रहेगा बशर्ते कि आप करें। महत्व नाम का नहीं है, उसका क्रियान्वयन महत्वपूर्ण है।

कर्म

प्र० (१७३) कर्म के बारे में ? कर्म के नियम, अवतार, इनकी कार्य प्रणाली क्या है ?
(पृ० ८८ इ०वे०)

पी० आर० जो भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, सबसे आप देख सकते हैं कि कर्म की विवेचना कितनी अच्छी प्रकार की गयी है, और इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है। कर्म की सरल व्याख्या है, वर्तमान पर पूर्व का प्रभाव। मैं नहीं समझता कि इस पर कोई मतभेद है। पूर्व तथा भावी जीवन की चर्चा में ही मतभेद उत्पन्न होता है। कोई-कोई धर्म भावी जीवन पर विश्वास ही नहीं करते। कोई-कोई धर्म अवतारवाद में विश्वास करते हैं। पूर्वजन्म सिद्ध करने के लिये तर्क की गुन्जाइस तो प्रतीत होती है। और तर्क के द्वारा जब आप पूर्व जन्म का होना एक बार स्वीकार कर लेते हैं, तो तर्क ही द्वारा भावी जीवन को भी मानना ही चाहिये। कर्म का वास्तिविक अर्थ है, अपने क्रिया-कलापों द्वारा उत्पन्न पूर्व संस्कारों का प्रभाव। हम कोई क्रिया करते हैं तो वह क्रिया हमारे ऊपर अपना छाप छोड़ती है। ये छाप हमारी भावी क्रियाओं को अनुशासित एवं प्रतिबन्धित करती है। ऐसे छापों के समूह को एक शब्द में कर्म कहते हैं। अपने मिशन में हम कर्म को एक और शब्द से पुकारते हैं—'संस्कार'! यह केवल कुकृत्यों की ही परिणति कर्म में नहीं होती, अपितु अच्छी क्रियाओं की भी होती है। अच्छे कर्म द्वारा अच्छा भविष्य उपलब्ध होता है, जब कि बुरे कर्म बुरा भविष्य प्रस्तुत करता है। किन्तु आध्यात्मिक विकास पर हमारे विचार हैं कि पुनः जन्म होता ही नहीं। मेरा तात्पर्य इस प्रकार के जीवन से है, अर्थात भौतिक धरातल का अस्तित्व। हमें इसे कदापि नहीं चाहिये। और न ही हम अन्य धरातलों पर जीने की इच्छा रखते हैं। विचार मुक्त होने को है।

प्र० (१७४) किन्तु अच्छे और बुरे कर्म क्या है ? (पृ० ८९ इ०वे०)

पी० आर० जैसा कि परम्परागत समझा जाता है। आपको सामान्य नियम ज्ञात है। उदाहरण के लिये उदारता एक अच्छा कर्म समझा जाता है।

किन्तु हम परम्परागत समझा जानेवाला अर्थ ले सकते हैं । इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

प्र० (१७५) क्या इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता ? कैसे ? क्या अच्छा है और क्या बुरा ? आपके इस मनोभाव पर क्या यह निर्भर नहीं करता ?
(पृ० ८९ इ०वे०)

पी० आर० मैं आपको बता रहा हूं कि कर्म का वास्तविक अर्थ क्या है । कर्म का अर्थ है समस्त कर्मों का संग्रह-उन क्रियाओं के छाप । कुछ लोग मात्र बुरे कर्मों जैसे हत्या, डकैती, बलात्कार इत्यादि के प्रभाव को ही कर्म समझने की भूल करते हैं । किन्तु भारतवर्ष में हमारी धारणा का समुच्चय कर्म होता है । एक विशेष कर्म अथवा क्रिया आपके अनुसार अच्छा हो सकता है, और मेरी दृष्टि में वह बुरा हो सकता है इससे कोई तात्पर्य नहीं । हर हालत में समस्त कर्मों का समुच्चय होता है ।

प्र० (१७६) हाँ ! किन्तु, एक बुरा कार्य एक अच्छा कार्य हो सकता है ।
(पृ० ९० इ०वे०)

पी० आर० श्रीमान, आप समझते ही हैं यह एक ऐसा विषय है, जिसकी चर्चा हम यहां नहीं कर सकते । सब परिस्थितियों पर निर्भर करता है । उदाहरणार्थ युद्ध में आप एक शत्रु-सैनिक की हत्या कर देते हैं । सामान्य नियम के अन्तर्गत यह अनुचित है, किन्तु राष्ट्रीय एक देश-भक्ति के नियमों के अन्तर्गत यह अच्छा है । अतएव, मानव अस्तित्व के किस धरातल से आप एक विशिष्ट वस्तु को देख रहे हैं, यह इस पर निर्भर करता है ।

प्र० (१७७) ठीक, किन्तु यह कार्य कैसे करता है ? (पृ० ९० ई०वे०)

पी० आर० नियम सदा अपने मूल एवं उच्चतम धरातल से कार्य करता है । अन्य सब कुछ तो हमारी व्याख्यायें है । उदाहरण के लिये विगत युद्ध में विरोधी शान्ति उपासकों को ले; उन लोगों ने युद्ध में लड़ने से मना कर दिया, क्योंकि यह बुरा है । वे लोग कारागारों में बन्द कर दिये गये । इसलिये आप कह सकते हैं कि यदि आप शत्रु को मारना अस्वीकार करेंगे तो आपको बन्दीगृह में जाना पड़ेगा । उन विशिष्ट लोगों के सन्दर्भ में कम-से-कम यही कार्य और कारण समझा जा सकता है ।

अहंकार

प्र० (१७८) अहंकार क्या है ? (पृ० १६९ इ० वे०)

अहंकार कोई बुरी वस्तु नहीं है । सत्य कहा जाय तो यह एक सूचक है। यह किसी वस्तु का संकेत देता है । यह मेज है और मैं इसे ऊपर उठाता हूं । मैं इसे उठा सकता हूं, क्योंकि मेरे भीतर विद्यमान अहंकार की शक्ति मुझे संकेत देती है कि मैं इसे उठा सकता हूं । इस लिये आप देखते हैं कि अहंकार बुरा नहीं है । किन्तु गलती यह होती है कि अन्तरात्मा के इस ज्ञान को कि यह टेबुल उठा सकता हूं हम इस शरीर से सम्बद्ध कर देते हैं । यही गलती है, कि जो स्व को, अपना ज्ञान है हम उसका श्रेय शरीर को दे देते हैं । अतएव अहंकार तो वास्तव में स्व की शक्ति पहचानने का एक अनुसन्धान सूत्र है । अब देखें, मैं स्व के सम्पूर्ण विनाश के विपक्ष में हूं, क्योंकि यदि इसका नाश कर दिया दिया जाता है, तो हम कोई कार्य नहीं कर सकते । कम से कम भारत में सभी संतों ने कहा है कि 'स्व' का सम्पूर्ण विनाश आवश्यक है, किन्तु मैं इसके विपक्ष में हूं ।

प्र० (१७९) कृपया अहंकार पर थोड़ा और प्रकाश डालें ? (पृ० १७० इ०वे०)

बा० अहंकार ? मैं आपको बताता हूं कि यह क्या है । मनुष्य ईश्वर का कार्य ले लेता है, और अपना कार्य ईश्वर पर थोप देता है । यही वास्तविक कठिनाई है । हमें अपना कार्य करना चाहिये और ईश्वर को अपने ढंग से अपना कार्य करने देना चाहिये ।

प्र० (१८०) दुष्ट कौन लोग हैं ? और दूषित मार्ग कौन से हैं ?
(पृ० १५० इ०वे०)

बा० अप्राकृतिक कार्यों को करना ही दुष्टता है । जो कार्य मनुष्य को आध्यात्मिक तथा भौतिक रूप में पुष्ट करते है, अच्छे हैं और जो मनुष्य को मानसिक एवं भौतिक रूप में दुर्बल बनाते हैं, बुरे हैं ।

प्र० (१८१) स्वार्थपरता की यथार्थ व्याख्या आप किस प्रकार करेंगे।
(पृ० १०९ इ०वे०)

बा० यदि आपका हृदय आपके प्रति किये गये किसी की सेवा का आभार नहीं मानता, तो वही स्थार्थपरता है।

प्र० (१८२) बाबू जी ! भय की प्रकृति के बारे में आप क्या कहते हैं ?
(पृ० १९९ इ०वे०)

बा० भय बुद्धिमत्ता का मतिभ्रम है। यदि बुद्धि सही है तो कोई भय नहीं हो सकता।

प्र० (१८३) बाबू जी ! क्या आपके विचार से मतिभ्रम माया है ?
(पृ० १९९ इ०वे०)

बा० नहीं। सामान्यतः यह कहा जाता है कि माया एक छल है, किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूं। मैं समझता हूं कि माया ईश्वर की शक्ति है। जब हम नहीं जान पाते कि यह शक्ति किस प्रकार कार्य कर रही है तो हम घबड़ा जाते हैं और इसे माया के नाम से पुकारने लगते हैं। किन्तु जब हमें ज्ञान हो जाता है कि ईश्वरीय शक्ति किस प्रकार कार्य करती है। तब हमें यथार्थ की परख होती है। अतएव सच कहा जाये तो यह हमारा स्वयं का अज्ञान है। बुद्धजीवी ज्ञान उधार लेते हैं और देव पुरुष ज्ञान का निर्माण करते हैं।

●

अवतारी राम और कृष्ण को भी दुःख झेलने पड़े थे, जब तक वे इस पृथ्वी पर रहे।

—बाबू जी

विशिष्ट व्यक्ति

प्र० (१८४) आपने दैवी विशिष्ट व्यक्ति के बारे में लिखा है और यह भी कि उनके कारण अब मुक्ति प्राप्त करना अति सरल है। दैवि विशिष्ट व्यक्ति से आप का क्या तात्पर्य है ? (पृ० १२२ गा०ह०)

बा० वे एक सन्त हैं और सन्त कहे जाते हैं।

प्र० (१८५) क्या वे मनुष्य रूप में अवतीर्ण हैं ? (पृ० १२२ गा०ह०)

बा० हाँ, ! यह मैं कह सकता हूं।

प्र० (१८६) क्या वे अवतार हैं ? (पृ० १२२ गा०ह०)

बा० महापुरुषों का जन्म संयोगवश नहीं होता। उनका जन्म तभी होता है, जब संसार व्यग्र आशा के बीच उनकी प्रतीक्षा करता है।

प्र० (१८७) विशिष्ट व्यक्ति से क्या तात्पर्य है ? (पृ० ७९ गा०ह०)

बा० यह गोपनीय है।

प्र० (१८८) वे कबसे मनुष्य रूप में अवतीर्ण हैं ? क्या मैं उन्हें जान सकता हूं ? (पृ० १२२ गा०ह०)

बा० मैं लिख चुका हूं कि विशिष्ट व्यक्ति को कैसे जाना जाय। आप इसका प्रयास क्यों नहीं करते ? आप कुछ समय के लिये प्रयास करें और इसे प्राप्त करने की चेष्टा करें।

प्र० (१८९) प्राचीन युगों में अवतारों द्वारा किये कार्य को कृपया व्याख्या करें। (पृ० १७६ स०मा०यू०)

बा० श्री रामचन्द्र ने, मेरा अभिप्राय अवतार से है, समाज के लिये आचार सहिता तथा शिष्टाचार का निर्माण किया। श्री कृष्ण ने उसी नीव पर भवन की रचना की और साधना में भक्ति का समावेश किया। श्री कृष्ण के पूर्व इस भक्ति तत्व का अभाव था। इस प्रकार प्रत्येक अवतार अपने से पूर्व के अवतार के कार्य में रचनात्मक योग देता है। यही

नियम है। इसलिये, एक प्रकार से, बाद में आनेवाला प्रत्येक अवतार अपने से पूर्व में आये अवतार से महान समझा जा सकता है। इसी विचार से सामान्यत: श्री कृष्ण, श्री रामचन्द्र से महान समझे जाते हैं। किन्तु अन्य प्रकार से यदि आप इस पर विचार करें, तो महानता अथवा लघुता के ये विचार अनुचित हैं। प्रत्येक अवतार का प्रादुर्भाव समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिये एक विशिष्ट समय में होता है। इसलिये कोई किसी से महान अथवा लघु कैसे हो सकता है? केवल प्रयोजन ही महान अथवा लघु हो सकता है, अवतार नहीं।

प्र० (१९०) क्या आपको अभी कोई अवतार लेना बाकी रह गया है?
(पृ० ९२ इ०वे०)

बा० मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। जो जन्म लेने का इच्छुक नहीं है, वही इसका उत्तर दे सकता है।

पी० आर० बाबू जी के कहने का अभिप्राय है कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है कि वे पुन: अवतरित हों अथवा न हों। दैवी योजना में जैसी आवश्यकता हो, वैसा हो।

प्र० (१९१) कृपया आभा की व्याख्या करें। (पृ० ३६ इ०वे०)

बा० आभा आन्तरिक होती है, शरीर के बाहर नहीं। मानवीय आभा में केवल तीन रङ्ग होते हैं—लाल, काला तथा औजस्विता अथवा दीप्ति। काला बहुत बुरा होता है, और दोष तथा दुर्व्यवहार आदि प्रदर्शित करता है। लाल क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति होने की सूचना देता है। दीप्ति आध्यात्मिकता प्रदर्शित करता है। यह रंग चेहरे के किनारे-किनारे गालों पर होता है। आभा को कैसे पढ़ा जाये? व्यक्ति की स्थिति की गहराई में डूबे, तब, आभा, जो यथार्थत: भीतर है, प्रकाशित होगा।

प्र० (१९२) मैंने केवल चेहरे के खाल की सतह पर इन रंगों को देखा है।
(पृ० ३७ इ०वे०)

बा० यह ठीक था और रंग इसी प्रकार उभरता है।

प्र० (१९३) मैंने प्राय: नीला रंग देखा है, जबकि बाबू जी के अनुसार यह रंग आभा में नहीं होता। कृपया समझाइये। (पृ० ३७ इ०वे)

बा० हृदय क्षेत्र के प्रत्येक केन्द्र का अपना एक रंग होता है और एक अभ्यासी की स्थिति का अध्ययन न करते समय किसी विशेष केन्द्र का रंग प्रत्यक्ष में आ जाता है ओर इसे आभा का रंग समझ लेने में भूल हो जाती है।

प्र० (१९४) क्या मैं एक अन्य प्रश्न कर सकता हूं ? यह एक मूर्खतापूर्ण प्रश्न भी हो सकता है, किन्तु क्या आप स्पष्ट कर सकते हैं कि आप कौन हैं ?

(पृ० ८१ इ०वे०)

बा० मैं वह हूं जो मुझे होना चाहिये।

प्र० (१९५) हाँ ! क्या आप कुछ और अधिक नहीं बता सकते ?

(पृ० ८१ इ०वे०)

बा० अधिक से अधिक तथा कम से कम इनका कोई मूल्य नहीं है।

●

जो ईश्वर की खोज में प्रयत्नशील है, वह आत्मा है, और जिसे ढूढ़ा जा रहा है, वह परमात्मा है।

— लाला जी

गुरु

प्र० (१९६) उदाहरण के लिये क्या आप गुरु हैं ? (पृ० ८१ इ०वे०)

बा० मैं उस प्रकार नहीं सोचता ! मैं अपने बारे में यही समझता हूं कि मैं अपने सहयोगियों के बीच एक सहयोगी हूं।

प्र० (१९७) किन्तु मेरा विचार है कि बहुत से लोग आपका अपने गुरु अथवा शिक्षक के रूप में आदर करते हैं। (पृ० ८१ इ०वे०)

बा० मेरी चर्चा करते हुये उन्हें मेरे लिये किसी न किसी शब्द का प्रयोग करना ही पड़ेगा। वे इसी शब्द को अधिक चाहते हैं, जो मुझे पसन्द नहीं है।

पी० आर० इसे मैं समझा देता हूं। मेरे गुरु जी ने एक बार कहा था कि मान लें आप एक संस्था के अध्यक्ष हैं। आप सभी कर्मचारियों के लिये तो अध्यक्ष हैं, किन्तु स्वयं अपने लिये आप अध्यक्ष नहीं हैं। आप अपने लिये 'माइकेल' है। क्या ऐसा नहीं है ? इसलिये प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये वह नहीं होता, जो वह दूसरों के लिये होता है। यह सच है कि हम सब के लिये बाबू जी गुरु हैं, किन्तु स्वयं अपने लिये वे क्या हैं ? मैं इस विषय को गम्भीरता से लेता हूं। यह एक विषय है।

प्र० (१९८) क्या आप इन्हें गुरु की मान्यता देते हैं ? (पृ० ८२ इ०वे०)

पी० आर० हाँ ! हम लोग उन्हें गुरु मानते हैं। किन्तु समस्त महत्वपूर्ण शिक्षाओं में हमारे बाबू जी को एक महत्वपूर्ण शिक्षा यह है कि अन्तिम गुरु अथवा स्वामी केवल ईश्वर ही है। किन्तु ऐसे लोग हैं जो ईश्वर की शक्ति को प्रयोग करते हुये उसके प्रत्यक्ष निर्देशन से कार्य करते हैं। इसलिये वे कार्य तो "उसके" सामर्थ्य से करते हैं, किन्तु वे ईश्वर के पद से कार्य नहीं करते। उदाहरण के लिये हम प्रशिक्षक गण अपने गुरु की ओर से कार्य करते हैं, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि हम गुरु हैं। किन्तु कार्य निश्चित रूप में चलता ही रहता है। और हो सकता है, कुछ लोगों के लिये हम प्रशिक्षक हों, परन्तु अपने स्वयं के लिये तो हम

अपने गुरु के शिष्य ही हैं। और स्वयं अपने लिये वे स्वयं और जैसा कि बाबू जी ने स्वयं आपसे कहा है, कि स्वयं वह है, जो उन्हें होना चाहिये।

प्र० (१९९) किन्तु मैं जो हूं सो हूं इसकी तुलनात्मक भिन्नता कैसे स्पष्ट हो ? (पृ० ८२ इ०वे०)

पी० आर० यह एक सुन्दर प्रश्न है। आपने ठीक ही कहा है कि हम लोग जो हैं, सो हैं किन्तु हम लोग वह नहीं हैं, जो हम लोगों को होना चाहिये। यही अन्तर है।

प्र० (२००) एक व्यक्ति कितना प्रगति कर चुका है, देखने का सामर्थ्य क्या आप में है ? (पृ० ९२ इ०वे०)

बा० हाँ, मेरे कार्य में जितनी आवश्यकता है, मैं देख सकता हूं।

प्र० (२०१) कुछ लोग कहते हैं कि गुरु भीतर हैं। (पृ० ७३ इ०वे०)

बा० मैं आप को बताता हूं। केवल ईश्वर ही गुरु है। अन्य सभी लोग उसके मार्ग-दर्शन एवं निर्देशन में कार्य कर रहे हैं। सच कहा जाये तो यदि कोई कहता है कि, वह गुरु है, तो वह आध्यात्मिकता में अन्य लोगों को प्रशिक्षण देने के योग्य नहीं है। ऐसा व्यक्ति ईश्वर की पदवी का अपहरण कर रहा होता है।

प्र० (२०२) क्या मैं कल्पना कर सकता हूं कि मेरा शरीर गुरु का शरीर है, और जब मैं कर्म करता हूं तो वह कार्य मैं नहीं करता, बल्कि वे गुरु ही हैं, जो कार्य करते हैं। "गुरु हृदयस्थ है" की कल्पना की तुलना में क्या यह अधिक वाह्य विधि है ? (पृ० १२३ गा०ह०)

बा० मैं इसकी सलाह नहीं देता, मेरे कहने का तात्पर्य है कि गुरु का वास हृदय में है। वे उस अवस्था तक स्वयं ही आ जाते हैं। यह एक भाव है।

प्र० (२०३) यह लिखा है कि हमें ऐसा समझना चाहिये कि यह शरीर मेरा नहीं है, बल्कि गुरु का शरीर है और मेरे सारे कर्म और वह सब कुछ जो मैं करता हूं, गुरु के काम-काज हैं। क्या यह मूलतः सही है ? (पृ० १२४ गा०ह०)

बा० वह कुछ और बात है। यह उन अतीव समर्पित व्यक्तियों के लिये है, जो स्वयं ही तकनीकी रीतियों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, और उसे सम्बन्धित करते हैं। यह नवसिखुओं के लिये नहीं है।

पी० आर० जब कोई अत्यन्त समर्पित हो जाता है तो ऐसा नियमेव हो जाता है।

बा० इसमें बल नहीं लगाना चाहिये। इसे सहज आना चाहिये। अन्यथा यह भी मूर्ति-पूजा की तरह कुछ हो जा सकता है।

पी० आर० हम कह सकते हैं कि पूजन धार्मिकता है, और स्मरण आध्यात्मिकता।

प्र० (२०४) क्या आपके गुरु का योग पर प्रभुत्व है? (पृ० ८३ इ० वे०)

पी० आर० हाँ, इस विशेष योग पर है। हम इनको अधिकारी पुरुष मानते हैं। राज योग की इस पद्धति का, जिसे सहज-मार्ग कहा जाता है, जिसका अर्थ है "ईश्वरानुभूति का प्राकृतिक मार्ग" इसका अनुसन्धान इनके गुरु ने किया था। उनका भी नाम श्री रामचन्द्र जी ही था। किन्तु वे एक अन्य स्थान, फतेहगढ़ के निवासी थे। उन्होंने पुनरोत्थान किया—मैं पुनरोत्थान कर रहा हूं, क्योंकि मेरे गुरु के अनुसार प्राणाहुति देने की यह शक्ति अनेकों शताब्दी पूर्ण विद्यमान थी परन्तु बाद में लुप्त हो गयी—दैवी शक्ति को लोगों के हृदय में संप्रेषित करने की सम्भावना को इन्होंने पुनः खोल निकाला, ताकि लोग प्रगति करें, अपनी स्वयं की शक्ति से नहीं, जो सीमित है, चाहे कोई कितना ही शक्तिशाली एवं समर्थ क्यों न हो, बल्कि उस दैवी शक्ति के प्रभाव से जो उनके हृदय में उड़ेल दी जाती है। और मेरे गुरु इस परम्परा, इस अभ्यास का अनुसरण कर रहे हैं। यह अद्वितीय है। और इसलिये यह कहना सही है कि मेरे गुरु इस योग के मर्मज्ञ हैं। यह व्यवहारिक योग हैं। यह मात्र दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक नहीं है। इसे इन अवलम्बों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्र० (२०५) किन्तु प्रत्येक व्यक्ति तो गुरु नहीं हो सकता। क्या ऐसा नहीं है? (पृ० ८७ इ०वे०)

पी० आर० नहीं। किन्तु हमारे बाबू जी का चयन हुआ था। हमारे दादा गुरु ने अपने समस्त शिष्यों में से मेरे बाबू जी को ही इस कार्य को

अग्रसरित करने हेतु उपयुक्त व्यक्ति चुना। उन्हें इसे सम्पादित करने हेतु आवश्यक शक्ति प्रदान की गयी। किसी भी पद सम्पादन के लिये यह सत्य है। उदाहरणार्थ यदि आप राजा हैं तो आपका पुत्र भी राजा होगा। यह जन्म से है। पैतृक रूप में कुछ जन्म से प्राप्त होता है, कुछ दान में प्राप्त होता है। मैं आपको कुछ सम्पत्ति आपको लिख देता हूं, और आप तत्काल उस सम्पत्ति के स्वामी बन जाते हैं। आध्यात्मिक जीवन में या आध्यात्मिक पद सोपान में यह आवश्यक नहीं है कि पुत्र ही आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हों—मेरे कहने का तात्पर्य रक्त पुत्र से है। आध्यात्मिक पुत्र भी हो सकते हैं जो अपने गुरु द्वारा सौंपी गयी परम्परा को अग्रसरित रखते हैं।

प्र० (२०६) मुझे सदगुरु में रूचि है तथा प्रत्येक वस्तु में उन्हें देखना चाहता हूं, फलस्वरूप हर वस्तु से प्रेम करना चाहता हूं। किन्तु विलयन नहीं चाहता हूं। मेरे विचार से यह आत्महत्या है। यदि विलयन की कामना है, तो आत्महत्या ही किया जा सकता है। (पृ० १५६ गा०ह०)

ह० आत्महत्या विलयन नहीं है। आप चाहे जितनी बार आत्महत्या करें, किन्तु लयावस्था तक नहीं पहुंच सकते, क्योंकि आत्महत्या करके जन शर्तों से छुटकारा नहीं पाते जो लयावस्था प्राप्त करने के लिये आवश्यक है। इसका अर्थ है, आप अपने अतीत से, अपने पूर्व जन्मों से, अपने कर्म जन्य सभी समस्याओं से और अपने संस्कारों से छुटकारा नहीं पाते हैं। यह एक कारण है। दूसरी बात यह है कि जब आप कहते हैं, आप अपने में प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करने की ललक का अनुभव करते हैं और यदि आप इस प्रेम को सहज-मार्ग साधक के नाते उचित दिशा दें, अर्थात यदि आप यह प्रेम सदगुरु की समर्पित कर दें, तब इसका अर्थ होगा कि आप प्रेम को सही मार्ग में प्रेरित कर रहे हैं। यह अत्यन्त ही सहायक होता है। यदि आप ऐसा करें, तो आप प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे कि आपका प्रेम स्थान्तरित हो रहा है। आप अनुभव करेंगे कि बाबू जी के लिये किया गया प्रेम अनन्त महाप्रभु के लिये होगा। और उस परमतत्व के लिये किया गया प्रेम विलयन के लिये प्रेम होता है। यह विलयन कुछ ऐसी वस्तु नहीं है, जो आप प्रारम्भ में ही प्राप्त कर लें। यह कुछ ऐसी वस्तु है जो उस स्तर पर विकसित होता है।

दादा गुरु

प्र० (२०७) इस कार्य को आपने कैसे प्रारम्भ किया, जो आप इस समय कर रहे हैं ?
(पृ० ८६ इ०वे०)

बा० मेरे गुरु ने करने की आज्ञा दी, और इस प्रकार मैंने इसे प्रारम्भ किया।

प्र० (२०८) आपके गुरु ने ? वे कौन थे ? (पृ० ८६ इ०वे०)

पी० आर० इनके गुरु का भी नाम श्री रामचन्द्र जी था, और इस मिशन का नामकरण उन्हीं के नाम पर किया गया है। यह एक सम-संयोग है कि मेरे गुरु तथा गुरु के गुरु, दोनों के नाम एक ही है। भारतवर्ष में हमारे पास एक प्रथा है कि जब शिक्षा समाप्त हो जाती है, तब हम गुरु अथवा शिक्षक को शुल्क देते हैं। हम लोग इसे "गुरु-दक्षिणा" कहते हैं। हमारे दादा गुरु, हम उन्हें दादा गुरु कहते हैं, ने हमारे गुरु से कहा कि उनको "गुरु दक्षिणा" इस योग का मानव जाति के हितार्थ सम्पूर्ण जगत में प्रसार करना होगा। यही कारण है कि हमारे बाबू जी इस वृद्धावस्था में भी गोलार्ध की यात्रा कर रहे हैं। मूलत: यह योग भारतवर्ष तक ही सीमित था, किन्तु जैसा कि हमारे बाबू जी ने बार बार कहा है—"योग पर केवल भारतीयों का ही एकाधिकार नहीं है। बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति का इस पर जन्मसिद्ध अधिकार है।" इसीलिये वे अब इसके प्रत्याशियो को सहायता देने का प्रयास कर रहे हैं। हम इसे उन्हीं को प्रदान करते हैं, जो इसके प्रत्याशी हैं। हम इसे किसी व्यक्ति पर थोपते नहीं।

प्र० (२०९) किन्तु दादा गुरु के साथ आपका अपना प्रारम्भ कैसे हुआ ? मेरे कहने का अर्थ आरम्भ कैसा था ? आप उनसे कैसे मिले ?
(पृ० ८६ इ०वे०)

बा० यह घटना वश हुआ। मेरे मन में था कि मुझे एक अच्छे गुरु मिलें और मैंने इसके लिये प्रार्थना की और मुझे मेरे गुरु मिल गये।

प्र० (२१०) आप उनसे कब मिले ? (पृ० ८७ इ०वे०)

बा० मेरे विचार से लगभग ४५ वर्ष पूर्व ।

पी० आर० सम्भवतः ५० वर्ष पूर्व । जब मेरे गुरु की आयु २२ वर्ष की थी वे अपने गुरु के सम्पर्क में आये ।

प्र० (२११) और उन्होंने आपको क्या कुछ सिखाई ? (पृ० ८७ इ०वे)

बा० जो हम यहाँ इस समय कर रहे हैं । यही उन्होंने हमें सिखाया ।

प्र० (२१२) क्या आप हमें बता सकते हैं कि आप अपने गुरु लालाजी से कैसे मिलें ? (पृ० १७ स०मा०यू०)

बा० यह घटनावश हुआ । मैंने उनके बारे में केवल सुना था, किन्तु मैं उनके बारे में अधिक नहीं जानता था । अन्य लोगों की बातों का अनुसरण कर मैं उनके पास गया । उनकी प्राणाहुति मुझे भा गयी, जो मुझपर बहुत सुन्दर ढंग से क्रियाशील हुई । ये सब मेरे अनुभव ने मुझे बताया ।

प्र० (२१३) क्या इस जीवन के पूर्व लाला जी ने जन्म लिया था ? (पृ० ५३ स०मा०यू०)

बा० नहीं । वह असम्भव है ।

प्र० (२१४) क्या आपको वृद्ध दादा गुरु से सम्पर्क का कोई अनुभव होता है ? (पृ० ९४ इ०वे०)

बा० सम्पर्क सदा बना रहता है ।

प्र० (२१५) कैसे ? (पृ० ९४ इ०वे०)

बा० उसी प्रकार से जैसे होना चाहिये ।

पी० आर० यह आध्यात्मिक सम्पर्क होता है । दादा गुरु अब भौतिक संसार में नहीं हैं । वे सन् १९३२ में महासमाधि में लीन हो गये । किन्तु उनमें और हमारे बाबू जी में अनवरत सम्पर्क बना रहता है । हमने इसे देखा है । समय समय पर हमारे बाबू जी उनसे निर्देश लेते प्रतीत होते हैं । इसके बारे में वे हमें बताते हैं । क्या सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता, क्योंकि यह सम्बन्ध अस्तित्व के एक धरातल से अस्तित्व के दूसरे धरातल का है ।

बाबू जी

प्र० (२१६) आप एक आध्यात्मिक गुरु हैं, किन्तु आप धुम्रपान करते हैं। (पृ० १० इ०वे०)

बा० हाँ, मैं धुम्रपान करता हूं। आप क्यों चिन्ता करते हैं? मैं स्वयं भले ही विषपान करूँ, किन्तु यदि मैं आपको अमृत दे सकूँ तो उसे आपको ग्रहण करना चाहिये।

प्र० (२१७) आप विवाहित हैं और आपके बच्चे हैं। (पृ० १० इ०वे०)

बा० जी हाँ।

प्र० (२१८) यदि आप गिरफ्तार कर लिये जायें और कारागार में डाल दिये जायें तो आप क्या करेंगे? (पृ० १० इ०वे०)

बा० मैं आपको बता रहा हूं। पहले आपको अपने विचार ठीक कर लेना चाहिये। आपको बुरी बातों का विचार क्यों होना चाहिये, जब आप अच्छी बातों का विचार कर सकते हैं?

प्र० (२१९) आप अपने घर से इतने दूर हैं। क्या आपको घर की याद आती है? (पृ० ११ इ०वे०)

बा० जहाँ मैं हूं, वही मेरा घर है।

प्र० (२२०) किन्तु आपके बच्चों के बारे में? वे चिन्ता करते होंगे और आप को अनुपस्थिति में उनकी समस्यायें होंगी। (पृ० ११ इ०वे०)

बा० जब मैं वहाँ नहीं हूं, उन्हें अपनी समस्याओं को स्वयं हल करना है। वह अब उनकी समस्या है और उन्हें ही इसका समाधान ढूढ़ना है।

प्र० (२२१) अपने पूर्व-जन्म में आप क्या थे? (पृ० ५२ स०मा०यू०)

बा० यदि मैं कुछ कहूं तो इसका प्रमाण क्या है?

प्र० (२२२) मैं कोई प्रमाण नहीं चाहता। आप जो कहेंगे में स्वीकार कर लूंगा। (पृ० ५३ स०मा०यू०)

बा० मैं वैश्य जाति में उत्पन्न हुआ था। मैं निर्धन था। मेरी पत्नी लम्बी और पतली थी। मेरे पांच बच्चे थे। मैं कोई छोटा व्यापार करता था। देखिये ! वैश्य की वह प्रवृत्ति मेरे इस जीवन में अब भी है।

प्र० (२२३) क्या आप इस जीवन में दबाव-वश अथवा स्वयं अपनी इच्छानुसार आये हैं ? (पृ० ५३ स०मा०यू०)

बा० दोनों के मध्य से।

प्र० (२२४) बाबू जी, क्या आप सुखी हैं ? (पृ० १९७ इ०वे)

बा० सच कहा जाये तो मैंने सुखानुभूति का रसास्वादन कभी किया ही नहीं। मैं याद नहीं कर सकता कि मैं कभी सुखी रहा। हाँ, सुख की परिभाषा मैं दे सकता हूं। वह जो हर एक परिस्थिति में सुखी रहता है, वही सुखी है। किन्तु मैं आपको एक बात बताता हूं। सुख शान्ति से भारी होता है। मेरे विचार से पीड़ा ईश्वर के अधिक समीप है। यह मेरा विचार है। यद्यपि मैं गलत हो सकता हूं। किन्तु, विचार करें कि जब कभी मैं तीव्र पीड़ा में होता हूं तो मैं भी आह ! आह ! कराहता हूं, किन्तु इसमें भी एक विचित्र मनोरंजन होता है।

प्र० (२२५) बाबू जी गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। क्या आप इसके सम्बन्ध में कुछ बतायेंगे ? (पृ० १४ स०मा०यू०)

सु० उनके तीन पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हैं। एक पुत्री यहाँ बैठी है। सभी पुत्र विवाहित हैं। नाती-पोते भी हैं। वे शाहजहांपुर में रहते हैं। वे उत्तर प्रदेश के न्यायालय में सरकारी कर्मचारी थे और १९५५ में वे सेवा-निवृत्त हुये। विगत २१ वर्षों से वे अपना सम्पूर्ण जीवन श्री रामचन्द्र मिशन की सेवा में व्यतीत कर रहे हैं, जिसकी स्थापना इन्होंने सन १९४५ में, मानवता की भलाई के लिये की थी।

प्र० (२२६) आप संयमी-जीवन निभा रहे हैं। प्रायः ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं, जहाँ पारिवारिक जीवन, लोगों को संयम के लिये विवश तथा उत्तेजित करता है। (पृ० १५ स०मा०यू०)

सु० वे स्वयं अपनी इच्छा से निष्कपट भाव का एक धर्म-परायण जीवन व्यतीत करते हैं, जो सहज प्रत्यक्ष है। वस्तुतः यह अन्य शेष हम लोगों

के लिये उत्साहवर्द्धक हैं। हम भी उनका अनुसरण कर सकते हैं। इसमें कोई विरोध नहीं है। विपरीत इसके यह प्रश्न एक सन्यासी पर लागू होता है। ऐसा यहाँ नहीं है। बाबू जी के जीवन में जो हम देखते हैं, एक गृहस्थ होते हुये, एक पारिवारिक मनुष्य होते हुये, आप इस पद्धति का अनुसरण कर उच्चतम लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

●

बिना माँगे किसी को अपनी सलाह मत दो, वरना इसका परिणाम बुरा हो सकता है।

—लाला जी

मानव - जीवन

प्र० (२२७) विश्व की व्याख्या आप किस प्रकार करेंगे ? (पृ० ६३ इ०वे०)

बा० मैं कह सकता हूं कि विश्व सत्यता की अतिशयोक्ति है।

प्र० (२२८) विश्व-प्रेम की प्राप्ति कैसे की जा सकती है ? (पृ० १७० इ०वे०)

बा० सत्य बात तो यह है कि सम्पूर्ण प्रेम ईश्वर को स्थान्तरित कर देना है। एक का स्मरण सम्पूर्ण का स्मरण लाता है। यदि मैं आप से प्रेम करता हूं, तो आपके बच्चों से भी प्रेम करता हूं। एक संस्था है, जो विगत ४० वर्षों से विश्व-प्रेम की शिक्षा दे रही है, किन्तु सफलता नहीं मिली। क्यों ? इसका कारण घृणा है, हृदय में घृणा की उपस्थिति। घृणा को दूर कर दें तो प्रेम स्वतः विकसित होगा। इसलिये आप इस पर कार्य न करें, बल्कि इसके मूल पर कार्य करें।

प्र० (२२९) मानव-जीवन का तथा मानव-अस्तित्व का क्या उद्देश्य है ?
(पृ० ७४ इ०वे०)

बा० उद्देश्य है मात्र ईश्वरानुभूति अथवा अपने स्व का, आत्मा का ज्ञान, जो दैवी है।

पी० आ० बाबू जी कहना है कि मानव-जीवन का उद्देश्य मानव में उपलब्ध दिव्य प्रकृति को अनुभव करना है तथा उनकी शिक्षा इतनी उन्नत है कि वह इसी जीवन में सम्भव हो सकता है। आप देखते हैं कि सामान्यतः योग में इसे विकास का साधन समझते हैं। यह सत्य है कि विकास लाखों वर्षों तक होता रहता है, और हो सकता है कि किसी दिन हम विकास का फल अथवा परिणाम देख लें। किन्तु योग इसी जीवन में प्राप्त करने का संक्षिप्त साधन है, जो हम अन्तिम रूप में प्राप्त करेंगे। यही हमारे बाबू जी की शिक्षा है।

प्र० (२३०) जीवन क्या है ? (पृ० ५३ स०मा०यू०)

वा० अनेकों परिभाषायें हैं। किन्तु मैं आपको अपनी परिभाषा बतलाता हूं। जीवन में जीवन ही वास्तविक जीवन है।

प्र० (२३१) जीवन का उद्देश्य क्या है ? हम कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं ?
(पृ० ७७ स०मा०यू०)

पी० आर० मनुष्य आदि कारण से आता है और उसका गन्तव्य आदि कारण ही है। और उसके अस्तित्व का उद्देश्य आदि कारण तक वापस जाना है।

प्र० (२३२) जीवन के वास्तविक मूल्य क्या हैं ? (पृ० ७७ इ०वे०)

पी० आर० मैं समझता हूं, पश्चिम में, जीवन के भौतिक मूल्यों से हटते हुये जैसा परिवर्तन आ चुका है। जीवन का वास्तविक मूल्य क्या है, निश्चित करने के लिये प्रगाढ़ शोध हो रहा है। आप जानते हैं, लोग जब, जीवन में भौतिकता से पूर्णतया संतप्त हो जाते हैं, तब वे यह अनुभव कर पाते हैं कि भौतिक मूल्यों का कोई अर्थ नहीं होता। सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों में इतना तीव्र परिवर्तन क्यों हो रहा है ? आज सारे यूरोप में परिवर्तन का एक उफान है, और यह भौतिक जीवन की अस्वीकृति है। इसलिये लोग स्वयं ही इस समझ पर आ रहे हैं कि भौतिक मूल्य वास्तविक मूल्य नहीं है। तब वास्तविक मूल्य क्या है ? हम कहते हैं, यह देवत्व है। यह सन्तुलित मन की उपलब्धि है, यह व्यक्ति के कर्तव्य का सही निर्वाह है। अथवा जैसा कि मेरे बाबू जी कहते हैं, साधुता, व्यक्ति के सम्पूर्ण चित्र शक्ति को समुचित क्रिया-शीलता ही साधुता है। समुचित क्रिया-शीलता पर ध्यान दें, कोई अतिरंजन नहीं, कोई दुराव-छिपाव नहीं।

प्र० (२३३) विना नये संस्कारों के निर्माण के हम कैसे जी सकते हैं ?
(पृ० ८० स०मा०यू०)

पी० आर० यह आध्यात्मिक अभ्यास के परिणाम से होता है। यह किसी विशिष्ट प्रयास का परिणाम नहीं होता। आप देखते हैं कि हम अपना प्रयास अपनाये गये दिशा में इस विचार से नहीं करते कि हम विना संस्कारों का निर्माण किये जीवन व्यतीत करेंगे। यह दो विधि से प्राप्त होता है। एक तो यह है कि हम स्व केन्द्रित हैं, अपने आप में केन्द्री-

भूत हैं। अतएव हम जो कुछ विचार करते हैं, अथवा कार्य करते हैं, हम व्यक्तिगत रूप से उसमें गहराई तक आबद्ध होते हैं। और चूंकि हम गहराई तक फँसे होते हैं, अतः प्रत्येक बात जिसका हम विचार करते हैं अथवा करते हैं, उनके परिणाम हमें व्यक्तिगत रूप से प्रभावित करते हैं। जब हम ध्यान में बैठते हैं तो हम अपने से भिन्न किसी व्यक्ति का चिन्तन करना आरम्भ करते हैं। इस प्रकार ध्यान स्वयं से उस अन्य वस्तु का स्थानान्तरित हो जाता है। यह सुगमता से समझाया जा सकता हैं। मान लें, आपका अपना बच्चा बीमार है, उस दशा में आप अत्यधिक प्रभावित होते हैं। किन्तु जब एक पड़ोसी का बच्चा बीमार होता है, तब हम सहानुभूति तो अनुभव कर सकते हैं, परन्तु वह हमें अधिक प्रभावित नहीं करता। अतः संस्कार ही न हो, इसका सरलतम उपाय यही है कि 'मेरा' कुछ भी नहीं है हम ऐसा विचार करें। बाबू जी ने कहा है कि हम सदा बाह्य वस्तुओं से अपने स्वयं से बाहर के वस्तुओं से आकर्षित होते हैं। उनका कहा एक उदाहरण है, जैसे सुन्दर वस्तुओं की प्रशंसा करना, जैसे गुलाब, फूल इत्यादि। सृष्टि रचना की प्रशंसा करने में कुछ भी अनुचित नहीं है किन्तु मान लें, मैं एक सुन्दर वस्तु देख लेता हूं, और फिर उसी के चिन्तन में बना रहता हूं अथवा मैं उसको याद बनाये रखता हूं कि 'हाय ! वह कितना सुन्दर था ! हाय ! वह कितना सुन्दर था। तो मैं संस्कार निर्मित कर रहा होता हूं। जब वे संस्कार या इन सस्कारों के छाप गहरे बन जाते हैं, तो मैं अपने रूचि के पदार्थ को अपने अधिकार में प्राप्त कर लेना चाहता हूं। यदि इसकी प्राप्ति में हमें सफलता मिल जाती है, तब हमारी वास्तविक समस्या प्रारम्भ होती है क्योंकि तब हमें इसकी देख-भाल करनी पड़ती है, हमें इसकी रक्षा करनी पड़ती है, हमें इसे सम्भाल कर रखना पड़ता है, और ये समस्यायें बड़ी होती ही है।

इस प्रकार प्रसंसा से बातें उलझ सकती है। जब आप किसी वस्तु को सर्व प्रथम देखते हैं, उस समय प्रशंसा का भाव नहीं होता वह आश्चर्य का भाव होता है। ऐसे सुन्दर वस्तु का अस्तित्व कैसे है ? आश्चर्य का भाव कभी संस्कार निर्माण नहीं करता। किन्तु जब मैं अपने स्वयं का उसकी भावना में आरोपित कर देता हूं, उसकी प्रशंसा करता हूं और उसकी कामना करने लगता हूं, तब संस्कार का निर्माण आरम्भ होता है। ध्यान में यह होता है कि बाबू जी आपको ध्यान

करने के लिये एक ध्येय दे देते हैं :—हृदय में प्रकाश ! और हमारे ध्यान हेतु यह पदार्थ हमें अवस्मात अथवा अललटप नहीं मिला है, क्योंकि यद्यपि हमारा अन्तिम लक्ष्य उस सार तत्व को प्राप्त करना होता है जो निर्गुण है, निराकार है, अनाम है, परन्तु बहुत ही कम लोग यथार्थ रूप मे ऐसे भाव वाचक तत्व का ध्यान कर सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि मैं कहूं कि "मैं आपको शून्य रुपये अथवा शून्य अंक दूंगा" तो इसके कोई अर्थ नहीं होते। यद्यपि शून्य के आधार से रहित गणित विद्या ही नहीं रह सकती। उसी प्रकार बाबू जी ने हमें ध्यान करने के लिये ऐसा पदार्थ दिया है, जिसका न कोई आकार है, न वर्णन किया जा सकता है। प्रकाश का वर्णन नहीं हो सकता। आप केवल इतना ही कह सकते हैं कि कि प्रकाश प्रकाश है। बाबू जी का कथन है कि केवल यही एक वस्तु है जो वस्तु होते हुये भी लगभग तत्व जैसा है। अब जब हम इस प्रकार के पदार्थ पर ध्यान करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मन उसमें रम जाता है, किन्तु मन उसे प्राप्त करने की लालसा या इच्छा नहीं कर सकता। यह एक ऐसी वस्तु है, जिसे हम प्यार तो कर सकते हैं, किन्तु उसे रख नहीं सकते। हमें प्रकाश की आवश्यकता तो रहती है, किन्तु हम उस पर कभी आधिपत्य नहीं करते। इस प्रकार मन स्वयं को भूलने के लिये प्रशिक्षित हो जाता है और किसी अन्य वस्तु की ओर चलने, जो फिर भी इतना सूक्ष्म है कि हम इसकी इच्छा या लालसा या उसके प्रति ममत्व नहीं कर सकते। अतएव इस प्रकार जब हम ध्यान द्वारा मन का प्राकृतिक तथा व्यवस्थित ढंग से प्रशिक्षित एवं संयमित कर लेते हैं, तब किसी संस्कार का निर्माण नहीं होता।

प्र० (२३४) 'स्वतन्त्रता एव स्वतंत्र होना' ' ' शब्दों के क्या अर्थ हैं ?
(पृ० ८३ इ०वे०)

बा० स्वतन्त्रता-जब आप स्वतन्त्रता से भी स्वतन्त्र हो, तभी यथार्थ स्वतन्त्रता हुआ।

प्र० (२३५) स्वतन्त्रता से स्वतन्त्र ? (पृ० ८४ इ०वे०)

बा० हाँ, वही वास्तविक मोक्ष है जब आप मोक्ष से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

पी० आर० इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। वास्तविक मोक्ष वह स्थिति है, जब आप को मोक्ष अथवा बन्धन का भी ज्ञान न रहे। क्यों

कि जब हम कहते हैं, कि उसे मोक्ष प्राप्त हो गया, तब हम इसकी तुलना इसके पूर्व की स्थिति के साथ करने लगते हैं। इसलिये यह एक तुलनात्मक स्थिति होती है। किन्तु पूर्णत्व की स्थिति मोक्ष और बन्धन दोनों से परे हैं।

प्र० (२३६) मनुष्य के सदाचार क्या हैं? (पृ० १५० इ०वे०)

बा० उच्च स्तरीय विचारों का चिन्तन यही मनुष्य का सदाचार है। जब आप इसका विचार करेंगे, तो आप इसे प्राप्त भी करेंगे। इसके लिये प्रयास करें। मैं समझता हूं कि १० वर्षों के भीतर सभी राष्ट्रों की सभ्यता संशोधित हो जानी चाहिये।

क्या आप मुझे बता सकते हैं कि मनुष्य की सबसे बड़ी मूर्खता क्या है? मैं आपको बताता हूं। हम सदा विगत के बारे में सोचते हैं किन्तु भविष्य के निर्माण को भूल जाते हैं। यही हमारी सबसे बड़ी मूर्खता है।

प्र० (२३७) क्या संकल्प एवं इच्छा भिन्न हैं? (पृ० १५१ इ०वे०)

बा० इच्छा अपने स्थान पर बुरी है। किन्तु यदि इसे उचित मोड़ दे दिया जाये तो यह अच्छी है। हम इच्छा का प्रयोग अनुचित ढंग से करते हैं। संकल्प इच्छा के लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया है।

प्र० (२३८) विद्वता क्या है? (पृ० १६८ इ०वे०)

बा० ईश्वरी शक्ति का उचित उपयोग।

प्र० (२३९) बाबू जी! वास्तविक लक्ष्य के बारे में क्या आप हमें कुछ और बतायेंगे। (पृ० १०३ गा०ह०)

बा० मैं लक्ष्य के साथ खो गया हूं।

पी० आर० अब हमें दो तत्वों को प्राप्त करना है। लक्ष्य एवं सद्गुरु।

बा० मैं समझता हूं, इसकी इतनी ही व्याख्या पर्याप्त है।

प्र० (२४०) बाबू जी संयास के प्रति आपके क्या विचार है? (पृ० ९१ इ०वे०)

बा० सन्यास आवश्यक नहीं है।

प्र० (२४१) क्यों नहीं ? (पृ० ९१ इ०वे०)

बा० क्योंकि जब वे वन में जाते हैं, वे प्रायः अपने परिवार, अपने बच्चे आदि के बारे में ही सोचते रहते हैं। तब हम वहाँ क्यों जायें ? हमें यहीं रहना चाहिये। घटनाओं से निर्लिप्त तथा आसक्ति रहित होकर। भागने की आवश्यकता नहीं है। जब हम ईश्वर को सुगमता से पा सकते हैं, तो हम इन संकटों में क्यों पड़ें ?

पी० आर० एक अन्य पक्ष भी विचारणीय है। ईश्वर केवल उनके लिये नहीं हो सकता, जो जीवन के मोह का त्याग करते हैं। यदि ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति में, हर वस्तु में, है तो निश्चित है कि ईश्वर हम सभी लोगों के लिये है। इसलिये सन्यासी के लिये यदि एक मार्ग है, तो गृहस्थों के लिये भी उतना ही प्रभावी एक मार्ग अवश्य ही होना चाहिये। एक बार किसी व्यक्ति ने अविवाहित जीवन के बारे में बाबू जी से प्रश्न किया था कि क्या आध्यात्मिक प्रगति के लिये अविवाहित जीवन आवश्यक है ? यही वे जानना चाहते थे। मेरे बाबू जी ने दो टुक स्पष्ट कह दिया—"ईश्वर मूर्ख नहीं है कि दो लिंगों की रचना करता, यदि एक ही पर्याप्त होता।"

प्र० (२४२) बाबू जी ! माँस खाने के बारे आप क्या कहते हैं ?
(पृ० ६५ गा०ह०)

बा० मैं आपको सहयोग देता हुआ उत्तर दे रहा हूं। मैं इसकी अनुमति तब तक के लिये देता हूं, जब तब आप स्वयं ही बन्द न कर दें।

प्र० (२४३) यदि हम माँस खाते हैं, तो क्या इससे आप पर कार्य-भार बढ़ जायेगा ?
(पृ० ६५ गा०ह०)

बा० यह मुझसे सम्बन्धित है। आप वही करें जो आपसे सम्बन्धित है और मैं अपना कार्य करूंगा।

प्र० (२४४) मैं एक भ्रष्ट संस्था में कार्यरत हूं। हर स्थान पर मैं भ्रष्ट लोगों से घिरा रहता हूं। मैं इस आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण कैसे कर सकता हूं। (पृ० २० स०मा०यू०)

बा० ये व्यक्तिगत समस्यायें हैं। और व्यक्तिगत हल ढूढ़ निकालने होंगे।

सु० निसन्देह समस्यायें मौलिक हैं। इनके उपाय व्यक्तिगत रूप में ढूढ़ना चाहिये। कोई स्थापित नियमावली नहीं है। लेकिन यह पद्धति सहायक होती है।

पी० आर० यह सहज कल्पना है कि केवल व्यवसायिक संस्थाओं में ही भ्रष्टाचार है। यह सर्वत्र समान रूप से है। सर्वत्र भ्रष्टाचार है। हम लोग भ्रष्टाचार से घिरे हुये हैं। किन्तु लोगों को व्यक्तिगत रूप में अपने लिये इनका हल ढूढ़ना होगा। यदि आप इच्छुक होते हैं तो बाबू जी से सहायता निश्चित मिलती है।

बा० उर्ध्वतत्वों से अपने को अनुरक्त अनुभव करें, तब निम्नस्तरीय वस्तुयें स्वतः लुप्त हो जायेंगी। अपनी इच्छा शक्ति को उच्चतर की प्राप्ति में लगाये और निम्नस्तर का शमन हो जायेगा।

प्र० (२४५) मैं दिन भर भौतिकता से घिरा रहता हूं। मैं उच्च विचारों को और और अपना मन केन्द्रित नहीं कर सकता। मुझे क्या करना चाहिये ?
(पृ० २१ स०मा०यू०)

सु० यही कारण है कि हम बाबू जी के पास आते हैं।

प्र० (२४६) मेरी समस्या यह है कि मैं सदा भौतिकवादियों के सम्पर्क में रहता हूं। मेरी दृष्टि कभी उर्द्धगामी नहीं होगी। उपाय क्या है ? क्या मैं कार्यालय आदि के अपने मित्रों को छोड़ दूं ? (पृ० २२ स०मा०यू०)

बा० सन्तों का संग करें।

प्र० (२४७) मैं ऐसे सन्तों की संगत प्राप्त नहीं कर सकता।
(पृ० २२ स०मा०यू०)

बा० ऐसे व्यक्ति का संग करें जिसका कोई व्यक्तित्व नहीं।

प्र० (२४८) वह तो केवल ईश्वरानुकम्पा से प्राप्त होता है।
(पृ० २२ स०मा०यू०)

बा० तब इसके लिये प्रार्थना करें। अपने प्रश्न का उत्तर आपने स्वयं दे दिया।

प्र० (२४९) मैं एक ऐसे स्थान पर था, जहाँ लोग कहते थे कि कुछ भूत रहते हैं और मैं बहुत भयभीत रहता था। (पृ० १०१ स०मा०यू०)

पी० आर० आप यह कैसे जानते थे कि वहाँ भयभीत होने के लिये भूत है ?

प्र० (२५०) मुझे कुछ व्यक्तियों ने बतलाया था। (पृ० १०१ स०मा०यू०)

पी० आर० तब आपने भय को स्वयं प्रस्तावित किया। यदि आप को भूत के बारे में बताया नहीं जाता, तो आप भय अनुभव नहीं करते।

बा० उनके अस्तित्व को नकार जाये और आपको भय नहीं होगा।

प्र० (२५१) हमसे क्या करने की अपेक्षा की जाती है ? (पृ० ७५ इ०वे०)

पी० आर० आधारभूत वस्तु यह है कि स्वयं मन ही वह साधन है जिसके सहारे हमें अपने को विकसित करना है। और मन ही अधमता एवं पतन का भी उपकरण है। हमारे सहज मार्ग नाम के राजयोग पद्धति के अनुसार मेरे बाबू जी कहते हैं कि इसे करने का एक ही मार्ग है कि मन को एक नई दिशा दी जाय और मनुष्य को देवत्व प्रदान कराने वाले लक्ष्य की ओर उसे प्रेरित किया जाय। मन की वर्तमान वृत्ति अथवा स्वभाव को उचित दिशा की ओर मोड़ देना आवश्यक है।

प्र० (२५२) आप कैसे समझते हैं कि इन सबका अन्त हो जायेगा ? यह मूर्खता हो सकती है, किन्तु आप किस प्रकार समझते हैं कि सभ्यता के लिये इसका अन्त हो जायेगा। (पृ० ७५ इ०वे०)

पी० आर० हम देखते हैं कि सभ्यता के अनेकों अर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ यहाँ पश्चिम में आप सभ्यता से वह नहीं समझते जो हम पूर्व में उसी शब्द से समझते हैं। पूर्व में सभ्यता का अर्थ है, शिष्टता, इसके अनेकों अर्थ है। यह बहुत ही साफ है। प्रत्येक व्यक्ति इसके बारे में जानता है। किन्तु आज पश्चिम में सभ्यता के बारे में जो समझा जाता है, उसका अर्थ प्रतीत होता है, भौतिक धन की प्राप्ति, सुखी जीवन की सुविधायें, मनोरंजन, शारीरिक सुख और इसी प्रकार की वस्तुयें। आज सभ्यता के नाम एवं परिवेश में यही सब हो रहा है, जब कि हमारी समझ के अनुसार, अपितु मेरे बाबू जी की समझ के अनुसार सभ्यता

का अर्थ होना चाहिये देवत्व। समाज अन्ततः व्यक्ति से ही बना है। आप समाज को समुदाय में अथवा समूह में परिवर्तित नहीं कर सकते। आप केवल इसमें रहने वाले व्यक्तियों को एक-एक कर परिवर्तित करके ही इसमें परिवर्तन ला सकते हैं। और जब वृहदाकार विस्तार में व्यक्तियों में परिवर्तन आ जाता है, तो हम कहते हैं—समाज में परिवर्तन आ गया। अतएव हम व्यक्ति से प्रारम्भ करके समाज में परिवर्तन लाने के इच्छुक हैं। समाज हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारे लक्ष्य में सदा व्यक्ति ही रहता है। किन्तु जब आप व्यक्तियो को परिवर्तित अथवा रूपान्तरित करते हैं, तो आप समाज के ही परिवर्तन में सहायता करते हैं। सो एक प्रकार से यह मानवीय रूपान्तरण की पद्धति, राष्ट्रीय सीमाएं, सामाजिक सीमायें, एवं जातीय सीमायें पार कर लेगी और अन्त में, यदि यह सफल हो गयी तो एक ऐसे विश्व समाज की ओर ले जायेंगे जो जीवन के वास्तविक मूल्यों को स्वीकार करती होगी जैसा कि सभ्यता का सही अर्थ होना काहिये।

प्र० (२५३) किन्तु जब मनुष्य एक विशिष्ट बिन्दु पर पहुंच जाता है, तो क्या वहाँ अन्त नहीं होता है ? (पृ० ९३ इ०वे०)

पी० आर० आप देखें, इस पर दो ढंग से विचार किया जा सकता है। हमारी धारणा है कि पुनःर्जन्म दो ढंग से होता है। एक है कर्म की परम्परा, जहाँ आप अपने कर्मो से संचालित पुनःर्जन्म लेते हैं। आपकी रूचि का कोई प्रश्न नहीं रहता। आप एक निश्चित समय में, एक निश्चित वातावरण में, परिवेश में, निश्चित स्थितियों में आप पुनः जन्म लेते हैं। आपका भविष्य, अतीत में उठायी गयी नींव पर निर्मित होता है। दूसरे लोग, कथित मुक्त-आत्मायें हैं, वे गुरु जो समय-समय पर स्वेच्छा मानव की प्रगति में सहायता हेतु भौतिक धरातल पर अवतरित होते हैं। मेरा विश्वास है कि वर्तमान में हम सब का विवशता का पुनःर्जन्म है। किन्तु यदि मेरे गुरु पुनःर्जन्म लेते हैं तो वह पूर्णतया ऐच्छिक होगा। कर्म उसका लेशमात्र आधार नहीं होगा। अतएव यह कहना सम्भव नहीं है कि वे पुनःर्जन्म लेंगे अथवा नहीं, क्योंकि यह विश्वजनीन परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यदि मानवता को इस भौतिक धरातल पर उनकी उपस्थिति की आवश्यकता होगी, तो वे पुनः अवतरित होंगे, अन्यथा यहीं।

प्र० (२५४) बाबू जी ! परमाणु के गर्भ में प्रोटोन और न्यूट्रोन को आप जानते हैं। क्या आप समझते हैं कि ये अनन्त हैं ? (पृ० १६८ इ०वे०)

बा० मैं आपको बताता हूं—यदि ये कण मूल में सरल होते तथा बाहर भी सरल होते तो ये ईश्वर होते।

प्र० (२५५) बाबू जी ने अपनी पुस्तक 'सत्य का उदय" में कहा है कि महाप्रलय के समय जिस बिन्दु पर सब कुछ को पहुंचना है, उसी बिन्दु को हम सब को प्राप्त करना है। सांसारिक जीवन इसके विपरीत है, किन्तु उनका कहना है कि यह भी नितान्त आवश्यक है। क्या यहाँ विरोधाभास नहीं है ? (पृ० १५४ गा०ह०)

ह० प्रलय लक्ष्य है, और उसका साधन में कोई हस्ताक्षेप नहीं है। यहाँ प्रलय का अर्थ है अहंकार एवं अहंकारी प्रवित्तियों का विलयन। यह सफाई एवं सदगुरु की सहायता से सम्भव है। इसलिये मेरा विचार है कि यही लक्ष्य है। और प्रेम, लक्ष्य-प्राप्ति का साधन है। इन दो नामावलियों के मध्य संगति बिठाने में मुझे कोई कठिनाई दिखाई नहीं पड़ती। उनमें कोई विरोधाभास नहीं है।

●

बिना पूर्ण मनुष्य बने ईश्वरानुभूति असम्भव है।

—लाला जी

शुद्धि - पत्र

पृष्ठ	प्रश्न	प्र०/उ०	पंक्ति	अशुद्ध (छपा हुआ है)	शुद्ध (पढ़ें)
२	६	उ०	४	चित्र	चित्त
२	११	प्र०	१	परिपृर्णता	परिपूर्णता
४	१७	प्र०	१	अन्तंज्ञान	अन्तर्ज्ञान
४	१७	उ०	१	विकार	विचार
५	१९	उ०	२	था	थी

५ प्र० २१ का उत्तर निम्नलिखित है :—

बा० यह उसी प्रकार है, जो एक स्टूल और उसकी पालिश में अन्तर है। (इसके बाद प्रश्न २२ निम्नलिखित पढ़ें :—)

प्र० (२२) दार्शनिक अध्यन का मूल्य क्या है ?

(पृ० १६८ ई०वे०)

(इसका उत्तर पुस्तक में पृष्ठ ५ पर पढ़ें, जो भूल से प्र० २१ के उत्तर के स्थान पर छप गया है)।

५ उद्धरण — २ चित्र चित्त

(प्र० २९ के उत्तर के बाद प्रश्न ३० एवं उसका उत्तर भूल से नियत स्थान पर नहीं छप सका, जो निम्नलिखित है)।

प्र० (३०) यदि अभ्यासी साधना छोड़ दे, तो क्या इसके लिये कोई दण्ड भी है ?

(पृ० ७९ गा०ह०)

बा० कोई दण्ड नहीं है। मैं आपको एक बात कह रहा हूं। केवल सहयोग ही आवश्यक है। यहां अधिक त्याग की आवश्यकता नहीं।

९	३९	उ०	१	आधार	आचार
९	४०	प्र०	१	विश्वाम	विश्वास
११	४७	उ०	३	मंत्र-योग्य	मंत्र-योग
१७	६८	उ०	४	और	बार
१९	७६	उ०	१	आ०	बा०
२६	१०१	उ०	१	आ०	बा०
२७	१०३	उ०	१२	अवथा	अवस्था
२८	१०७	उ०	७	गृहस्थों	गृहस्थों
२९	११२	उ०	३	अध्यात्मिकता	आध्यात्मिकता
२९	११२	उ०	७	अश	अंश
३३	१२६	उ०	४	देश	देख
३४	१२८	उ०	९	काम	तीन काम
३५	१३१	उ०	२	आप	आप का
३५	१३१	उ०	६	अंक	अंग
३७	उद्धारण	—	२	तीन	तीस
३८	१३६	उ०	१	की	को
३८	१३६	उ०	८	होता	होती
३९	१३६	उ०	३	तल्लीनता	तल्लीनता
३९	१३६	उ०	८	जगना	जगाना
४०	१३७	उ०	७	चिन्त	चित्त
४०	१३९	उ० (बा०)	२	के मरते	में उमरते
४५	१४८	उ०	१४	आप	आज
४६	१५०	उ०	१	पी० आप०	पी० आर०
४६	१५०	उ०	१	पाणाहुति	प्राणाहुति
४७	१५६	प्र०	२	है	ही
४७	१५७	प्र०	१	को	की
४९	उद्धरण	—	३	अध्यात्मिक	आध्यात्मिक
५०	१६०	उ०	९	की	को

५१	१६१	उ०	९	में	न
५१	१६१	उ०	११	सुजित	सृजित
५२	१६१	उ०	६	दोषमुक्त	दोषयुक्त
५२	१६१	उ०	११	जब	जड़
५३	१६१	उ०	६	स्वीकृत	स्वीकृति
५३	१६१	उ०	१०	जीवन	जीवित
५४	१६३	उ०	१	हय	हम
५५	१६७	उ०	९	ही	हौं
५६	१६७	उ०	४	रूगान्ता	रुग्नता
५६	१६७	उ०	४	करता	करना
५७	१७२	उ०	२	पूर्वविचार	पुनःविचार
५८	१७३	उ०	१	सबसे	सब में
५८	१७३	उ०	१०	वास्तिविक	वास्वकि
६०	१७८	उ०	१	उत्तर बाबूजी ने दिया है, बा० छप नहीं सका	
६०	१७८	उ०	११	दिया दिया	दिया
६१	१८१	उ०	२	स्थार्थपरता	स्वार्थपरता
६४	१९३	उ०	२	न करते	करते
६५	१९८	उ०	२	को	की
६५	१९८	उ०	४	को शक्ति को	की शक्ति का
६७	२०४	उ०	९	खोल	खोज
७०	२११	प्र०	१	सिखाई	सिखाया
७४	२२९	उ०	३	पी० आ०	पी० आर०
७६	२३३	उ०	२६	प्रसंसा	प्रशंसा
७६	२३३	उ०	३०	का	को
७७	२३३	उ०	२	अवस्मात	अकस्मात
७७	२३५	उ०	१	माक्ष	मोक्ष
७८	२३६	उ०	७	भूखता	मूर्खता
७९	२४४	प्र०	१	पर में	पर

अभ्यासियों के लिए ध्यान की विधि

प्रात:—दिल में ईश्वरीय प्रकाश विद्यमान होना मानकर ध्यान धारण करें। मन को जबरदस्ती खींच कर लगाने की कोशिश न करें। एकाग्रता के लिए प्रयत्नशील न हों और न प्रकाश को देखने का प्रयास करें। बिल्कुल सहज या साधारण रीति से ध्यान में लगे रहें। प्रकाश चाहे दिखाई पड़े या न पड़े, उसकी चिन्ता न करें। यह अभ्यास आरम्भ में कम से कम आधा घण्टा करें और धीरे-धीरे बढ़ा कर एक घण्टा ले आवें।

सायं—शाम को आधा घण्टा ध्यान में बैठें और यह ख्याल करें कि समस्त द्वेष, विकार, आन्तरिक कालिमा और मल आदि शरीर से पीछे की ओर धुएं के रूप में निकले जा रहे हैं और निकल गये हैं। अपने विचार द्वारा उनको निकाल फेंकते भी रहें।

प्रार्थना—रात्रि में सोने से पूर्व निम्नलिखित प्रार्थना अत्यन्त विनीत भाव से इस प्रकार करें कि दो-तीन बार शब्दों को मन में कहें और उसके सत्य-भाव पर चिन्तन आरम्भ करे, यहाँ तक कि उसी में खो जायें और यह सत्य-भाव भी भूला हुआ सा प्रतीत हो। केवल ध्यानमग्न अवस्था सी छाई रहे।

हे नाथ! तू ही मनुष्य जीवन का ध्येय है।
हमारी इच्छायें हमारी उन्नति में बाधक हैं।
तू ही हमारा एक मात्र स्वामी और इष्ट है।
बिना तेरी सहायता तेरी प्राप्ति असम्भव है।

सहजमार्ग के दस नियम

१. प्रत्येक भाई प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठे, संध्योपासना नियमित समय पर जहाँ तक हो सके समाप्त कर ले। पूजा के लिए एक पृथक् स्थान और आसन नियत कर ले। यथाशक्ति एक ही आसन से बैठने की आदत डाले, और शारीरिक व मानसिक पवित्रता का अधिक ध्यान रक्खे।

२. पूजा प्रार्थना से आरम्भ की जावे। प्रार्थना आत्मिक उन्नति के लिए होनी चाहिए और इस तरह कि हृदय प्रेम से भर जाये।

३. प्रत्येक भाई को चाहिये कि अपना ध्येय अवश्य निश्चित कर ले, और वह यह कि ईश्वर तक पहुँच कर उसमें अपनी लय अवस्था प्राप्त करके पूर्ण स्थित प्राप्त करनी है। जब तक यह बात प्राप्त न हो जाये चैन न आये।

४. अपना जीवन साधारण बना ले और वह ऐसा साधारण हो कि आदि प्रकृति (nature) से मिल जुल जाये।

५. सच बोले और प्रत्येक कष्ट को ईश्वर की तरफ से अपनी भलाई के लिए समझे और उसका धन्यवाद दें।

६. सारे जगत को अपना भाई समझे और सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करे।

७. यदि किसी से कोई कष्ट पहुँचे, तो उसका बदला लेने का इच्छुक न हो वरन् ईश्वर की तरफ से समझे और धन्यवाद दे।

८. भोजन करने के समय जो कुछ मिल जाये प्रसन्नता से पाये, और ईश्वर की याद में भोजन करें। शुद्ध और पवित्र कमाई का ध्यान रहे।

९. अपना रहन-सहन और व्यवहार इतना सुन्दर बना ले कि जिसको देखने मात्र से ही लोगों को पवित्र आत्मा होने का भास हो और लोग उससे प्रेम करने लगें।

१०. यदि कोई अपराध भूल से हो जाये तो सोते समय ईश्वर को अपने सम्मुख समझकर उससे दीनता की अवस्था में क्षमा माँगे और पश्चाताप करे, और प्रार्थना व प्रयत्न भी करे कि भविष्य में कोई अपराध न होने पाये।